चौथी दुनिया

www.chauthiduniya.com

हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

मूल्य 5 रुपये

1986 से प्रकाशित

संयुक्तांक : 12 मई से 1 जून 2014

Postal Regn. No. DL (ND)-11/6139/2012-13-14, RNI No. DELHI/2009/30467

भारत का सशक्त प्रधानमंत्री

नरेंद्र मोदी किन सवालों को प्राथमिकता देते हैं, यह देश की जनता जानना चाहती है. इस वक्त वह लोगों के असीम समर्थन और आकांक्षाओं के शेर की सवारी कर रहे हैं. अगर वह समस्याओं को हल करते हुए दिखाई देते हैं, तो यह देश उन्हें महानायक की तरह मान लेगा, क्योंकि आज नरेंद्र मोदी के सामने वही स्थिति है, जो जवाहर लाल नेहरू के सामने थी.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

संतोष भारतीय

नरेंद्र मोदी को ईश्वर ने, अल्लाह ने, गॉड ने, वाहेगुरू ने या दूसरे शब्दों में कहें तो वक्त ने इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया है. नरेंद्र मोदी के सामने पिछले 64 वर्षों की सफलताओं और असफलताओं के अनुभव है. किस पार्टी ने या किस प्रधानमंत्री ने लोगों के लिए क्या किया और क्या नहीं किया इसकी लंबी फ़ेहरिस्त है. आज नरेंद्र मोदी के सामने यह देश अवसरों की एक खुली क़िताब की मानिंद सामने खड़ा है. नरेंद्र मोदी को मिले इस अवसर के पीछे देश की जनता का सकारात्मक समर्थन है और यह सकारात्मक समर्थन उनके पक्ष में जब निर्मित हो रहा था, तो इस निर्माण को देश का कोई पत्रकार, कोई बुद्धिजीवी और कोई सर्वे करने वाला किसी भी अंश में समझ नहीं पाया. शायद इस बनते समर्थन को नरेंद्र मोदी भी समझ नहीं पाए होंगे. वह भी कहीं न कहीं ईश्वर को या वक्त को धन्यवाद दे रहे होंगे और इस अभूतपूर्व समर्थन को प्रणाम कर रहे होंगे.

इस अभूतपूर्व समर्थन का निर्माण जिन कारणों से हुआ, वह कारण संसद में बैठने वाले हर व्यक्ति को जानना चाहिए. ख़ासकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को तो अवश्य ही जानना चाहिए. कारण, गुस्सा और इससे निकला हुआ समर्थन दरअसल एक शेर है, जिसके ऊपर आज नरेंद्र मोदी सवार हुए हैं. मनमोहन सिंह जब प्रधानमंत्री बने थे, तो देश के समक्ष समस्याओं का अंबार पड़ा था. वह समस्याएं दो कारणों से पैदा हुई थी. पहली समस्या थी आज़ादी के बाद देश के आधारभूत विकास को मुख्य प्राथमिकता न मिलना. इस वजह से लोग विकास के दायरे से धीरे-धीरे बाहर होने लगे. नतीजतन हालत यहां तक पहुंच गई कि देश का एक बड़ा वर्ग स्वयं को सत्ता से वंचित समझने लगा. ऐसी स्थिति में यह देश गृहयुद्ध के क़गार पर भी पहुंच सकता था.

वर्ष 2004 में जब मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने थे, उस समय जनता को उनसे बहुत आशाएं थीं. दरअसल, उन दिनों यह देश कई समस्याओं के दौर से गुजर रहा था. वर्ष 1991 में मनमोहन सिंह ने बतौर वित्तमंत्री देश के सामने आशाओं का एक पहाड़ खड़ा कर दिया था. बिना कहे उन्होंने समस्याओं की समस्त ज़िम्मेदारी जवाहर लाल नेहरू , लाल बहादुर शास्त्री, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी और चंद्रशेखर जैसे पूर्व प्रधानमंत्रियों पर डाल दी. उस समय उनकी बातों पर देश की जनता ने सहज विश्वास कर लिया था. मनमोहन सिंह ने यह आशा दिलाई थी कि अगले 20 वर्षों में खुली आर्थिक नीतियों की वजह से या उदार अर्थव्यवस्था की वजह से इस देश के आम नागरिक की ज़िंदगी में काफ़ी बदलाव आएंगे. बिजली, सड़क और पानी की समस्याओं का समाधान हो जाएगा. ग़रीबी काफ़ी हद तक दूर हो जाएगी और रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे. हक़ीक़त में ऐसा कुछ नहीं हुआ. इसके बरअक्स मनमोहन सिंह का दस वर्षीय कार्यकाल इस मुल्क़ को विदेशी हाथों में सौंपने का कार्यकाल रहा. इस दौरान हमारे तमाम घरेलू क़ारोबार बुरी तरह प्रभावित हो गए. मामूली से मामूली क्षेत्र मसलन, सब्ज़ी और फूल के क़ारोबार में भी विदेशी कंपनियों का दख़ल बढ़ गया. वहीं दूसरी ओर हमारी बुनियादी ढांचे की हालत जस की तस बनी रही. इस दौरान तमाम विदेशी निवेश उपभोक्ता क्षेत्र में आए, प्रायोरिटी सेक्टर में नहीं. इसके ऊपर मनमोहन सिंह ने कभी ध्यान नहीं दिया, क्योंकि मनमोहन सिंह की खुली अर्थव्यवस्था का मतलब ही यही था. आज हालत यह है कि बाज़ार की परिधि से इस देश का आम आदमी ग़ायब है. जिसे हम प्रो-मार्केट इकोनॉमी कहते हैं, वह सिर्फ़ उन्हीं लोगों को ध्यान में रखकर अपनी योजना बनाती है, जिनकी जेब में कुछ भी ख़रीदने लायक पैसा है. दूसरी ओर जिनकी जेब में सिर्फ़ खाने लायक पैसा है, उनके लिए यह बाज़ार व्यवस्था नहीं सोचती. वर्ष 2004 में जब मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने थे, उस समय देश के 60 ज़िले नक्सल प्रभावित थे, लेकिन आज 272 से ज़्यादा ज़िले नक्सलवादियों के प्रभाव में हैं. यह कम से कम एक पैमाना है, जो यह बताता है कि अर्थव्यवस्था का लाभ देश की जनता को नहीं मिला. असल में अर्थव्यवस्था का लाभ सिर्फ़ उच्च मध्यम वर्ग को मिला या व्यापारियों को मिला या फिर हमारे देश का पैसा विदेशों में गया. जिस जीडीपी की बात की जाती है, दरअसल वह जीडीपी एक तरीक़े से नकली आकड़ों के ऊपर निर्भर है. हालांकि, इस बात की बहस कभी नहीं होती कि जीडीपी और सेंसेक्स आधारित अर्थव्यवस्था की प्रगति के आंकड़े कितने सही हैं और कितने ग़लत. निःसंदेह यही स्थिति इस देश को धीरे-धीरे आपसी तनाव और गृहयुद्ध की ओर ढकेल सकता है.

> मानना यह चाहिए कि अगले दो महीने में नरेंद्र मोदी काम करते हुए दिखाई देंगे. वह संघ और भारतीय जनता पार्टी को तीन साल तक एक किनारे रखेंगे. अगर देश के ग़रीबों, दलितों, पिछडों, सवर्ण ग़रीबों, मुसलमानों की ज़िंदगी में बदलाव आता है, तो फिर वे सवाल जिन्हें हम राम जन्मभूमि या बाबरी मस्जिद कहते हैं या धारा 370 कहते हैं या कॉमन सिविल कोड कहते हैं, इन सवालों का ज़िंदगी से रिश्ता नहीं. बल्कि दिमाग से रिश्ता है.

मनमोहन सिंह की इन्हीं नीतियों की वजह से इस देश में पांच हज़ार करोड़ रुपये का पहला भ्रष्टाचार सामने आया. उसके बाद पांच हज़ार, दस हज़ार, पंद्रह हज़ार, बीस हज़ार और सरकार जाते-जाते छब्बीस लाख करोड़ रुपये का भ्रष्टाचार सामने आया. हमारे देश में सन् नब्बे से पहले की सरकार को कोटा लाइसेंस परमिट की सरकार कही जाती थी, लेकिन उस सरकार में ग़रीबों के ऊपर ध्यान दिया जाता था. जन कल्याण की योजनाएं बनाई जाती थीं. ग़रीब आदमी कैसे ज़िंदा रहे, इस बारे में चर्चा होती थी. उन दिनों लोकसभा और राज्य सभा की बहसें यह बताती हैं कि देश की समस्याओं को लेकर हमारी लोकसभा और राज्य सभा कितनी चिंतित रहती थी. इन नीतियों को कांग्रेस और उसकी सहयोगी पार्टियों ने बख़ूबी अमल में लाया और इन नीतियों का समर्थन कमोवेश उन सभी दलों ने किया, जो कांग्रेस के साथ सरकार बनाने में या सरकार को ज़िंदा रखने में अहम भूमिका निभाई.

(शेष पृष्ठ 2 पर)

घर का डॉक्टर

प्रकृति के अनमोल तत्वों द्वारा तैयार किया गया आयुर्वेदिक तेल राहत रूह औषधियुक्त जड़ी-बूटियों का सशक्त मिश्रण है।

- सर दर्द
- बदन दर्द
- जोड़ों के दर्द
- सर्दी जुकाम
- जले कटे एवं चर्म रोग
- चक्कर आना (समलवाई)
- दिमाग की कमजोरी
- अनिद्रा में लाभकारी

वर्ष 1881 से निरन्तर सेवा में

हरबंशराम का आयुर्वेदिक तेल

तेल राहत रूह

तिल के तेल से निर्मित

अन्य उत्कृष्ट उत्पाद

हरबंशराम भगवानदास आयुर्वेदिक संस्थान प्रा.लि.

website:www.harbanshram.com Customer Care No.- 08447 427 621

जनरल मर्चेन्ट एवं केमिस्ट शॉप में भी उपलब्ध

क्यों हारे नीतीश और लालू 04

आम आदमी पार्टी ने इतिहास रचा 06

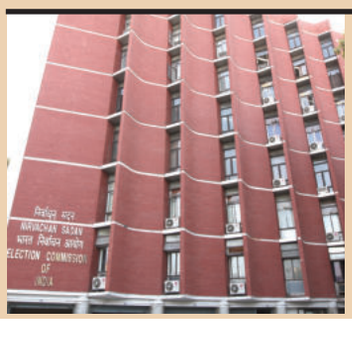

लोकतंत्र के इस महापर्व में निर्वाचन आयोग की भूमिका 15

साई की महिमा 20

भारत का सशक्त प्रधानमंत्री

पृष्ठ एक का शेष

मेरा मानना है कि राहुल गांधी देश की समस्याओं को नहीं समझ पाए और न ही वह नेहरू और इंदिरा गांधी के विचारों को समझ पाए. इस देश में आम आदमी की मुख्य समस्या महंगाई और बेरोज़गारी है और सरकार की पहली प्राथमिकता रोज़गार का सृजन करना है, यह बात भी राहुल गांधी नहीं समझ पाए. जिस अर्थव्यवस्था को मनमोहन सिंह ने पैदा किया और उससे देश की अर्थव्यवस्था को कितना नुक़सान पहुंचा, यह बात भी राहुल गांधी नहीं समझ पाए. यही कारण था कि चुनावों के दौरान वह देश की जनता को कोई आशा नहीं दे पाए.

दरअसल, राहुल गांधी जनता के आक्रोश और उसके संकेतों को भी समझने में असमर्थ रहे. कांग्रेस के दोबारा सत्ता में आने के बाद बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली और राजस्थान में विधानसभा के चुनाव हुए. इन सभी राज्यों में कांग्रेस की बुरी तरह हार हुई, लेकिन राहुल गांधी अपने कल्पना के महल में सहचरों के साथ शगल के लिए बातचीत करते रहे. देश के लोगों को क्या सपना दिखाना है, इस बारे में उन्होंने कभी सोचा ही नहीं. राहुल गांधी अपनी कोई टीम भी नहीं बना पाए. इस देश को चलाने के लिए समझदार लोगों की एक टीम चाहिए, जो दिन रात समस्याओं से उपजी समस्याओं के बारे में अपने नेता को अवगत करा सकें. राहुल गांधी ने जितने भी प्रयोग किए वे नाकाफ़ी साबित हुए, क्योंकि उन प्रयोगों का देश की समस्याओं से कोई रिश्ता ही नहीं था. राहुल गांधी के राजनीतिक क्रियाकलापों में उस आदमी का कोई स्थान नहीं था, जिसने अपनी पूरी ज़िंदगी बतौर कार्यकर्ता समस्याओं से लड़ने और कांग्रेस को ज़िंदा रखने में लगा दिया.

दरअसल, राहुल गांधी को ऐसे लोग चाहिए थे, जो उन्हें लोगों को बेवकूफ बनाने वाले सपने दिखा सके. इसीलिए कांग्रेस पार्टी ने पूरे चुनाव के दौरान ख़ुद को असहाय पाया. एक तेज़ हवा के झोंके ने उसके सारे तमाम चुनाव प्रचार अभियान को धराशायी कर दिया. यह झोंका इतना ताक़तवर था कि उसमें राहुल गांधी स्वयं तिनके की तरह उड़ते नज़र आने लगे. अलबत्ता राहुल यह समझने में नाक़ाम रहे कि उन्हें लोगों से क्या संवाद करना है.

दरअसल, यह झोंका नरेंद्र मोदी का झोंका था न कि भारतीय जनता पार्टी का. पिछले दस वर्षों में लोकसभा में भारतीय जनता पार्टी ने जिस तरह की भूमिका निभाई, उससे भारतीय जनता पार्टी भी लोगों के नजरों में शंकित हो गई थी. जनता उसमें कोई भविष्य की आशा नहीं देख पा रही थी. नरेंद्र मोदी ने वर्ष 2006 से एक सुविचारित योजना बनाई कि किस तरह उन्हें 2014 के चुनाव में दिल्ली की गद्दी पर आना है. उनका पहला कदम गांधी परिवार के सबसे नज़दीक रहे अमिताभ बच्चन को अपने साथ जोड़ना था. तय शर्तों के मुताबिक़, सबसे पहले उन्होंने अमिताभ बच्चन को गुजरात का ब्रांड अंबेसडर बनाया. उसके बाद अमिताभ बच्चन ने क़रीब छह सौ टेलीविजन कार्यक्रमों के ज़रिए गुजरात की मार्केटिंग शुरू की. असल में यह गुजरात की मार्केटिंग नहीं, बल्कि नरेंद्र मोदी की मार्केटिंग थी. गुजरात कैसा है, कितना अच्छा है, गुजरात में क्या हो रहा है, गुजरात किस तरीक़े से लोगों के आकर्षण का केंद्र है और लोगों को गुजरात आने का आमंत्रण क्यों देना चाहिए, यह सब अमिताभ बच्चन ने नरेंद्र मोदी के लिए किया, क्योंकि गुजरात का मतलब नरेंद्र मोदी ही था. वहां से नरेंद्र मोदी ने ख़ुद को पहले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से मुक्त किया. उसके बाद नरेंद्र मोदी ने गुजरात भारतीय जनता पार्टी इकाई के सभी क़ाबिल नेता और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्ताओं को धीरे-धीरे किनारे कर दिया, क्योंकि वे सभी लोग गुजरात में नरेंद्र मोदी की विकास योजनाओं को चलाने में आड़े आ रहे थे. यह उनकी अपनी समझ और अपनी योजनाएं थीं, जिसे वह नरेंद्र मोदी के ज़रिए लागू कराना चाहते थे, लेकिन नरेंद्र मोदी ने उसे लागू नहीं किया और उन्होंने सफलता पूर्वक गुजरात को अपनी नीतियों से चलाया. उन्होंने इस बाबत न तो राजनीतिक सलाह नहीं ली और न ही कोई राजनीतिक हस्तक्षेप स्वीकार किया. यही वजह है कि नरेंद्र मोदी ने गुजरात को देश के सर्वाधिक सबसे विकसित राज्य में तब्दील कर दिया. उन्होंने एक ऐसा माहौल बनाया कि कोई उनके आंकड़ों की सच्चाई पर शंका न कर सके. जिस तरह उन्होंने गुजरात और उसके विकास मॉडल की मार्केटिंग की, उसकी मिसाल कहीं और देखने को नहीं मिलती. नरेंद्र मोदी के गुजरात मॉडल के ख़िलाफ़ न तो गुजरात में कोई स्वर उठा और न ही बाहर में. यही वजह है कि मोदी ने जो कहा, उसे सभी लोगों ने अक्षरश: स्वीकार कर लिया.

नरेंद्र मोदी ने दूसरा महत्वपूर्ण कदम भारतीय जनता पार्टी को अपनी मुट्ठी में क़ैद करने के लिए उठाया. नरेंद्र मोदी ने धीरे-धीरे हर उस नेता को किनारे कर दिया, जो उनके सामने खड़ा होने की ताक़त रखता था. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को उन्होंने यह कहा कि आरएसएस जैसी भारतीय जनता पार्टी चाहती है, उसे वह बनाएंगे. उसकी इच्छापूर्ति में जसवंत सिंह, लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी जैसे लोग थे. ये लोग उम्र में बड़े थे, अनुभव में बड़े थे और संघ के वर्तमान नेतृत्व से व्यक्तित्व में भी बड़े थे. नरेंद्र मोदी ने इन सबों को न केवल किनारे करने की रणनीति बनाई, बल्कि उसे सफलता पूर्वक कार्यान्वित भी किया. आरएसएस में उनके मुक़ाबले जो भी खड़ा हो सकता था, जिसमें एक उदाहरण संजय जोशी का है, उन्हें उन्होंने निर्ममता के साथ हाशिए पर खड़ा कर दिया. अब नरेंद्र मोदी सवालों को लेकर देश के लोगों के सामने जाने के लिए तैयार थे. नरेंद्र मोदी ने अपने विश्वस्त आईएएस अधिकारियों को साथ लेकर एक नई योजना बना डाली. वे योजनाएं कितने हज़ार करोड़ रुपये की थी, नहीं पता. वे योजनाएं कैसे कार्यान्वित हुई, किसी को नहीं पता, लेकिन उस योजना का परिणाम नज़र आया. हर टेलीविजन चैनल नरेंद्र मोदी के समर्थन या विरोध में बहस करता हुआ दिखाई दिया. टेलीविजन चैनलों ने न केवल एकतरफ़ा बहस की, बल्कि नरेंद्र मोदी को ईश्वर बना दिया. असल में यही कांग्रेस की सबसे बड़ी बेवकूफी रही. यह योजना पहले कांग्रेस में बनी कि भ्रष्टाचार, महंगाई, बेराज़गारी को मुद्दा मत बनने दो. उसकी जगह नरेंद्र मोदी को मुद्दा बनाओ, ताकि उन पर हमला किया जा सके. गुजरात का उदाहरण सामने रखकर हम देश को अपने साथ ले सकते हैं. नरेंद्र मोदी ने दरअसल इसी को अपना हथियार बना लिया. नरेंद्र मोदी की शिक्षा दीक्षा जयप्रकाश नारायण के आंदोलन के समय हुई थी. उस समय का जनसंघ या उस समय का संघ नरेंद्र मोदी को पूरी तरह से प्रशिक्षित कर गया. नरेंद्र मोदी ने कांग्रेस की हर कमज़ोरी को अपना हथियार बनाया. चुनाव के दौरान हमने देखा कि कांग्रेस ने जितने मूर्खता भरे बयान दिए, जिनमें चाय वाला वक्तव्य भी शामिल था, हर चीज को नरेंद्र मोदी और उनके साथियों ने अपना हथियार बना लिया और कांग्रेस को पीछे धकेल दिया.

नरेंद्र मोदी के भाषणों में देश की जनता को एक उमीद दिखी. एक ऐसी संभावना, जिसे राजनीतिक दल और पत्रकार नहीं समझ पाए, लेकिन ग़रीब आदमी को यह बात समझ में आ गई. उन्हें लगा कि पहली बार इस देश में सब लोगों को विकास की खीर का स्वाद चखने को मिलेगा. नरेंद्र मोदी ने यह एहसास भी दिलाया कि वह ग़रीब तबके से आते हैं, इसीलिए वह ग़रीबों की समस्याएं समझते हैं. नरेंद्र मोदी ने लोगों को इस बात का भी विश्वास दिलाया कि नौजवान उनकी पहली प्राथमिकता हैं, जबकि राहुल गांधी उम्र से नौजवान होने के कारण यह मान बैठे थे कि देश का नौजवान उनके साथ आएगा. लोग उम्र देखकर रिश्ता बनाते हैं. ऐसे में राहुल गांधी यह भूल गए कि नौजवानों के सामने बेरोज़गारी एक बड़ी समस्या है, बजाय उम्र के. इसीलिए राहुल गांधी की टीम का एक-एक आदमी इस चुनाव में हार गया. राहुल गांधी ने अपनी टीम में उन लोगों को शामिल किया था, जो अच्छा बोलते थे और जिनकी शक्ल-सूरत अच्छी थी, लेकिन अफ़सोस उन्हें समस्याओं की समझ नहीं थी. राहुल गांधी तो अमेठी के लोगों की दया से जीत गए, लेकिन इस चुनाव में उनकी नैतिक हार हो गई, क्योंकि कई बार यह ख़बरें आईं कि अलग अलग दौर में स्मृति ईरानी उनसे आगे चली गईं.

नरेंद्र मोदी ने देश के हर तबके को संबोधित किया. उन्होंने लोगों तक अपनी बात पहुंचाने के लिए टेलीविजन को हथियार की तरह इस्तेमाल किया. वह देश के हर कोने में गए और वहां जाकर उन्होंने भाषण भी दिया. टेलीविजन के माध्यम से उन जगहों पर भी उन्होंने अपनी बात पहुंचा दी, जहां वह नहीं जा रहे थे. अपने सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा में उन्होंने जनता को समझाया कि इस समय देश में एक ही कर्मठ व्यक्ति है, जिसका नाम नरेंद्र मोदी है और यह नरेंद्र मोदी संघ से भी अलग है. इसके अलावा, वह भारतीय जनता पार्टी से भी अलग है. उन्होंने इस बात की सावधानी रखी कि उनके प्रचार-प्रसार में भारतीय जनता पार्टी और संघ की झलक न दिखाई दे. नरेंद्र मोदी ने योजना पूर्वक, किस समय क्या कहना है, इसका पूरा ख़्याल रखा. उनके व्यक्तित्व में चार चांद लगे इस बाबत उन्होंने एक टीम भी बनाई. इस टीम ने उनसे जो कहा, उन्होंने वैसा ही कहा. इस टीम ने जैसे कपड़े पहनने के लिए कहा मोदी ने वैसे ही कपड़े पहने. जिस तरह उन्हें बोलने के लिए कहा गया, नरेंद्र मोदी वैसे ही बोले. हालांकि, नरेंद्र मोदी कहीं पर भी राजनीतिक सवालों से ख़ुद को अलग नहीं किया. उन्होंने हमला भी वहीं किया, जो हमला रराजनीतिक रूप से लोगों के दिमाग़ में उनकी समस्याएं बताता था. उन्होंने मां-बेटे की सरकार शब्द का सोच समझकर उपयोग किया. मां-बेटे की सरकार कहते ही लोगों को महंगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार की याद आ जाती थी. नरेंद्र मोदी ने कहीं पर भी मनमोहन सिंह के ऊपर हमला नहीं किया. उन्होंने मनमोहन सिंह को बेचारा बना दिया. कांग्रेस पार्टी ने मनमोहन सिंह का इस्तेमाल इस चुनाव में शायद इसीलिए नहीं किया कि वह अपनी सारी ज़िम्मेदारी मनमोहन सिंह के ऊपर डालना चाहती थी. साथ ही राहुल गांधी को एक ऐसे नेता के रूप में खड़ा करना चाहती थी, जो देश के लिए एक फैंटम की तरह आसमान से उतर रहा है, लेकिन जनता ने कांग्रेस की इस रणनीति को अस्वीकार कर दिया.

यहीं पर नरेंद्र मोदी के सामने अवसरों को वास्तविकता में बदलने की एक चुनौती खड़ी हुई. नरेंद्र मोदी किन सवालों को प्राथमिकता देते हैं, यह देश की जनता जानना चाहती है. इस वक्त वह लोगों के असीम समर्थन और आकांक्षाओं के शेर की सवारी कर रहे हैं. अगर वह समस्याओं को हल करते हुए दिखाई देते हैं, तो यह देश उन्हें महानायक की तरह मान लेगा, क्योंकि आज नरेंद्र मोदी के सामने वही स्थिति है, जो जवाहर लाल नेहरू के सामने थी. इंदिरा जी वर्ष 1971 में जैसा चाहतीं, वैसा कर सकती थीं. मोरार जी देसाई वर्ष 1977 में जैसा चाहते, वैसा कर सकते थे. उसी तरह विश्वनाथ प्रताप सिंह सन 1989 में जैसा चाहते वैसा कर सकते थे, क्योंकि लोग उनके साथ थे, लेकिन यह सभी लोग अपनी पार्टियों के अंर्तविरोधों से उपर नहीं जा पाए. राजीव गांधी सन 1984 में जो चाहे कर सकते थे, क्योंकि वह भी आशाओं के शेर पर सवार थे. उन्हें जनता का अभूतपूर्व समर्थन प्राप्त था. हालांकि ये सभी लोग आशाओं और अरमानों के उस शेर का शिकार हो गए, जिस पर उन्होंने सवारी की थी.

नरेंद्र मोदी को इतिहास ने कमोबेश वही स्वर्णिम अवसर दिया है. वक्त ने पूरे तौर पर उन्हें महानायक के रूप में खड़ा कर दिया है, लेकिन यह महानायक सिनेमा के पर्दे का है या असली जीवन का है, इसका फ़ैसला होना बाकी है, क्योंकि नरेंद्र मोदी के समक्ष यही सबसे बड़ी चुनौती है और देश के लोगों के सामने भी यही चुनौती है. मानना यह चाहिए कि अगले दो महीने में नरेंद्र मोदी काम करते हुए दिखाई देंगे. वह संघ और भारतीय जनता पार्टी को तीन साल तक एक किनारे रखेंगे. अगर देश के ग़रीबों, दलितों, पिछडों, सवर्ण ग़रीबों, मुसलमानों की ज़िंदगी में बदलाव आता है, तो फिर वे सवाल जिन्हें हम राम जन्मभूमि या बाबरी मस्जिद कहते हैं या धारा 370 कहते हैं या कॉमन सिविल कोड कहते हैं, इन सवालों का ज़िंदगी से रिश्ता नहीं. बल्कि दिमाग से रिश्ता है. अगर नरेंद्र मोदी लोगों की ज़िंदगी में बदलाव लाने में कामयाब होते हैं, तो इन सारे सवालों को वह आसानी से हल कर लेंगे, लेकिन वह पहले अगर इन सवालों को हल करने में लगेंगे और लोगों की ज़िंदगी में तब्दीली नहीं आएगी, तो नरेंद्र मोदी के महानायकत्व के सामने एक प्रश्न चिन्ह लग जाएगा. आशा करनी चाहिए कि नरेंद्र मोदी के सामने कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगेगा और इस देश की जनता ने, इतिहास ने जो अवसर दिया है वह अवसर इस देश को बदलने में बड़ी भूमिका निभाएगा. ■

editor@chauthiduniya.com

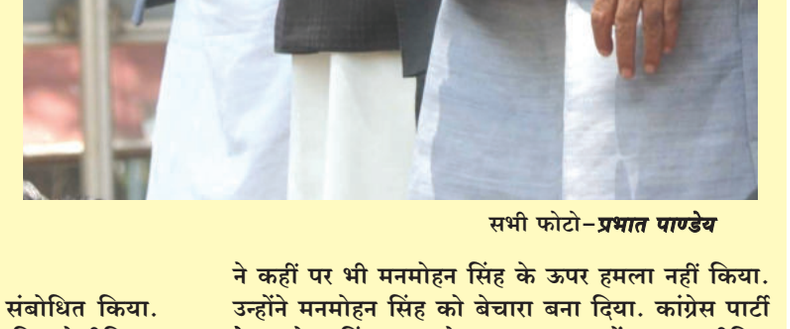

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

इस बार संसद में

- 11 प्रतिशत महिला सांसद हैं.
- 89 प्रतिशत पुरुष सांसद हैं.
- 7 प्रतिशत सांसदों की उम्र 70 वर्ष से ज्यादा है.
- 13 प्रतिशत सांसदों की उम्र 40 वर्ष से कम है.
- 41 प्रतिशत सांसद ग्रेजुएट हैं.
- 28 प्रतिशत सांसद पोस्ट ग्रेजुएट हैं.
- 1 प्रतिशत सांसद पत्रकार हैं.
- 27 प्रतिशत सांसद किसान हैं.
- 4 प्रतिशत चिकित्सक हैं.

चौथी दुनिया
हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

वर्ष 06 अंक 10-11-12 (संयुक्तांक)
दिल्ली,
RNI-DELHIN/2009/30467

संपादक
संतोष भारतीय
संपादक समन्वय
डॉ. मनीष कुमार

सहायक संपादक
सरोज कुमार सिंह (बिहार-झारखंड)
सरयू भवन, वेस्ट बोरिंग केनाल रोड,
हरीलाल स्वीट्स के निकट, पटना-800001
फोन: 0612 3211869, 09431421901

ब्यूरो चीफ (लखनऊ)
अजय कुमार
जे-3/2 डालीबाग कॉलोनी, हजरतगंज, लखनऊ-226001
फोन : 0522-2204678, 9415005111

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63 नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ-2, सेक्टर -11, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201301

फोन न.
संपादकीय 0120-6451999, 6450888
विज्ञापन व प्रसार 022-42296060, +91-8451050786, +91-9266627379
फैक्स न. 0120-2544378

पृष्ठ-24 हर शुक्रवार को प्रकाशित

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुन: प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

प्रमुख महिला प्रत्याशी जिन्होंने चुनाव में जीत हासिल किया है.

15 वीं लोकसभा में विपक्ष की नेता और भाजपा नेता सुषमा स्वराज
(विदिशा, मध्यप्रदेश)

स्तरहीन संवाद के लिए याद रखा जाएगा यह चुनाव

कमल मोरारका

सीबीआई आज यह बोल रही है कि कोयला घोटाला असल में एक घोटाला नहीं है, बल्कि इसे काफ़ी बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया. इसका क्या मतलब है? क्या सीबीआई निदेशक अपने नए स्वामी के लिए पहले से ही ऐसे बयान दे कर अपने लिए सुगम रास्ता बनाने की तैयारी कर रहे थे. मुझे लगता है कि उन्हें ऐसे बयान नहीं देने चाहिए थे. अगर किसी मामले में केस है, तो है और अगर सीबीआई को लगता है कि केस नहीं है तो उसे सुप्रीम कोर्ट में अपनी अंतिम रिपोर्ट पेश करनी चाहिए. लेकिन इस तरह के बयान का क्या अर्थ है? मुझे लगता है हम एक बेहद ख़राब दौर से गुजर रहे थे.

चुनाव ख़त्म हो चुके है. परिणाम आने से पहले ही एक ओर जीत-हार की घोषणाएं की जा रही थी. इस सब के बीच नेताओं के भाषा की स्तर नीचे चली गई. बजाय इसके कि पार्टियां ये बताएं कि अगर वे सत्ता में आते हैं, तो क्या करेंगे. वे हमें केवल दूसरे पक्ष की ग़लतियां बता रहे थे. ऐसी-ऐसी बातें की जा रही थी, जिसका वास्तविकता से कोई लेना-देना तक नहीं था. यह बहुत दुख की बात है. इसके अलावा, भाजपा के कोषाध्यक्ष का एक बयान आया था. उनका कहना था कि रिजर्व बैंक के गवर्नर को बदला नहीं जाएगा. मैं इस बयान से हैरान हूं. सबसे पहले, इस वक्त किसी ने भी ये नहीं कहा है कि रिजर्व बैंक के गवर्नर को बदला जाना चाहिए. सवाल है कि ये कोषाध्यक्ष महोदय ऐसे बयान देने वाले कौन होते हैं. उनका काम पार्टी के पैसे के खातों का हिसाब-किताब रखना है. उन्हें यह काम करना चाहिए. वे इस तरह के बयान देने वाले कौन होते हैं? क्या वह एक वित्त मंत्री हैं? यह बहुत दुख की बात है. सत्ता में आने से पहले, वह ऐसा बयान देकर राजनीतिक अपरिपक्वता का संकेत दे रहे थे. वास्तव में एक संस्था को कमज़ोर बनाने का काम वह कर रहे थे. रिजर्व बैंक के गवर्नर को भाजपा के एक छोटे से कार्यकर्ता से प्रमाण पत्र हासिल करने की ज़रूरत नहीं है. यह बयान निश्चित तौर पर राजनीतिक अपरिपक्वता को दर्शाता है.

दूसरी ओर, कांग्रेस पार्टी निश्चित रूप से मुसीबत में है. वे चुनाव अभियान के बारे में सुनिश्चित और सक्षम नहीं रहे. बहुत देर से, उन्होंने चुनाव अभियान में प्रियंका गांधी को उतारा. इसमें कोई शक नहीं है, प्रियंका गांधी ने अपने तरीक़े से चुनाव अभियान को मज़बूत बना दिया और इसके बदले भाजपा ने प्रतिक्रियावादी रास्ता अपनाया. बयानबाजी से हड़कंप मच गया. बीजेपी के लोगों ने प्रियंका पर जुबानी हमले शुरू कर दिए.

सीबीआई आज यह बोल रही है कि कोयला घोटाला असल में एक घोटाला नहीं है, बल्कि इसे काफी बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया. इसका क्या मतलब है? क्या सीबीआई निदेशक अपने नए स्वामी के लिए पहले से ही ऐसे बयान दे कर अपने लिए सुगम रास्ता बनाने की तैयारी कर रहे थे. मुझे लगता है कि उन्हें ऐसे बयान नहीं देने चाहिए थे. अगर किसी मामले में केस है, तो है और अगर सीबीआई को लगता है कि केस नहीं है, तो उसे सुप्रीम कोर्ट में अपनी अंतिम रिपोर्ट पेश करनी चाहिए. लेकिन इस तरह के बयान का क्या अर्थ है? मुझे लगता है हम एक बेहद ख़राब दौर से गुजर रहे थे. चुनाव परिणाम के आने तक कई दल, कई लोग अपनी राग अलापते रहे, लेकिन निश्चित रूप से यह चुनाव एक स्वस्थ और स्तरीय संवाद के ग़ायब होने के लिए याद रखा जाएगा. यह वास्तव में एक दुखद बात है. हमें आशा करनी चाहिए कि अब बेहतर भावना प्रबल होगी और लोग फिर से स्वस्थ और स्तरीय संवाद कायम करने की कोशिश करेंगे.

इस बीच, एक और हास्यास्पद टिप्पणी पाकिस्तान के गृह मंत्री की ओर से आई. उन्होंने कहा था कि मोदी को प्रधानमंत्री नहीं बनना चाहिए. यह एक हास्यास्पद टिप्पणी है, जो स्वीकार्य नहीं है. पाकिस्तान के आंतरिक मामलों के मंत्री यह तय करने वाले कौन होते हैं कि हमारा प्रधानमंत्री कौन होगा? यह तय करना भारत के लोगों का काम है. भारत के लोग यह तय कर चुके हैं. क्या कभी भारत के लोगों ने यह तय किया है कि पाकिस्तान में नवाज़ शरीफ़ की जीत होगी या इमरान ख़ान जीतेंगे या कोई और जीतेगा. पाकिस्तान में चुनाव होते हैं, लेकिन हम ऐसी कोई टिप्पणी कभी नहीं करते. हमें तो उसी के साथ चलना है, जो जीतेगा. पाकिस्तान को भी ऐसा ही करना होगा. वे यह नहीं कर सकते कि अपनी पसंद हमें बताए और हम पर यह थोपे कि कौन क्या बनेगा. अगर वे सोच रहे थे कि वे भारत के किसी वर्ग विशेष को ऐसे बयान से कोई संकेत दे रहे हैं, तो फिर वे बहुत ही ग़लत थे. भारतीय मुसलमान पाकिस्तान से निर्देशित नहीं होते और न ही किए जा सकते हैं. भारतीय मुसलमान भी पाकिस्तान को उसी दृष्टि से देखते है, जैसे भारत के बाक़ी लोग. पाकिस्तान एक विफल राष्ट्र है. वे बजाय हमें उपदेश देने के ख़ुद अपनी गिरेबां में झांके कि वे आज कहां खड़े हैं. ■

इस बीच, एक और हास्यास्पद टिप्पणी पाकिस्तान के गृह मंत्री की ओर से आई. उन्होंने कहा था कि मोदी को प्रधानमंत्री नहीं बनना चाहिए. यह एक हास्यास्पद टिप्पणी है, जो स्वीकार्य नहीं है. पाकिस्तान के आंतरिक मामलों के मंत्री यह तय करने वाले कौन होते हैं कि हमारा प्रधानमंत्री कौन होगा? यह तय करना भारत के लोगों का काम है. भारत के लोग यह तय कर चुके हैं. क्या कभी भारत के लोगों ने यह तय किया है कि पाकिस्तान में नवाज़ शरीफ़ की जीत होगी या इमरान ख़ान जीतेंगे या कोई और जीतेगा.

feedback@chauthiduniya.com

राज्य	नोटा
अंडमान-निकोबार द्वीप	1564 (0.8%)
अरुणाचल प्रदेश	6321(1.1%)
आंध्र प्रदेश	340615 (0.7%)
असम	147057(1.0%)
बिहार	581011(1.6%)
छत्तीसगढ़	224889(1.8%)
चंडीगढ़	3106(0.7%)
दादर एवं नगर हवेली	2962(1.8%)

मैंने इस्तीफ़ा क्यों दिया?

प्रमुख महिला प्रत्याशी जिन्होंने चुनाव में जीत हासिल किया है.

कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी
(रायबरेली, उत्तर प्रदेश)

मित्रों,

मैंने 17 मई को अपना इस्तीफ़ा महामहिम राज्यपाल को दिया. यह फ़ैसला मैंने काफ़ी सोच समझ और ज़िम्मेदारी के साथ ली. मैंने इस्तीफ़ा इसलिए दिया, क्योंकि बिहार में जनता दल यूनाइटेड के चुनाव दल का नेतृत्व मैं कर रहा था. इस चुनाव में जो चुनाव नतीज़े आए हैं, उसकी ज़िम्मेदारी मैंने ली है और मुझे लेना भी चाहिए था.

इस चुनाव के दौरान मैंने अपनी सरकार के कामों पर बिहार की जनता का समर्थन मांगा था. राजनीति मेरे लिए कोई सत्ता या कुर्सी की चीज नहीं है. मेरे लिए राजनीति मूल्यों पर आधारित सामाजिक परिवर्तन का ज़रिया है. मूल्यों पर समझौता नहीं किया जाता. विचारधारा और अपने मूल्यों के लिए मैं हमेशा बलिदान देने के लिए तैयार हूं. जब मैं मुख्यमंत्री बना था, तब बिहार की हालत क्या थी यह किसी से छुपी नहीं है. बिहार में सड़क नहीं थे और जहां थे वहां गड्ढा था. मेरे प्रयासों से हालत में सुधार हुआ और सड़कें बेहतर हुईं. मेरी सरकार के पहले सरकार नाम की चीज नहीं थी. क़ानून-व्यवस्था की स्थिति शर्मनाक थी. दिन-दहाड़े लूट और अपहरण की घटनाएं होती थी. अपराधी खुलेआम घूमते थे. हमने इसे भी बदलने की कोशिश की, हमें काफ़ी सफलता मिली. भय और ख़ौफ़ का माहौल बदला और बिहार में शांति लौटी. क़ानून एवं व्यवस्था का राज लौटा. पहले बिहार के अस्पताल बंद पड़े रहते थे. वहां न तो डॉक्टर थे और न ही दवाईयां. मैने इसे बदलने की कोशिश की और माहौल बदल गया. मैं यह नहीं कहता कि मैंने कोई चमत्कार किया, लेकिन मैंने इतना तो ज़रूर किया कि लोगों से अपने काम पर समर्थन मांग सकूं. मैंने बिहार के विकास के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी. मुझे इस बात का गर्व है कि मेरी सरकार ने विकास के मापदंडों पर बिहार को पहली पंक्ति का राज्य बना दिया.

मैंने अपने शासनकाल में सांप्रदायिकता को फैलने नहीं दिया. भागलपुर दंगा के दोषियों को हमने सज़ा दिलाई और दंगा पीड़ितों को मुआवज़ा से लेकर सभी तरह की सुविधाएं मुहैय्या कराईं. समाज में सद्भाव और सहयोग का महौल बनाने की कोशिश की. यह मैंने वोट के लिए नहीं किया और न ही मेरे लिए यह कोई राजनीतिक काम है. यह मेरे मूल्य हैं और मैं जहां रहूं, जैसा रहूं इन मूल्यों को छोड़ नहीं सकता. जब मुझे आभास हुआ कि नरेंद्र मोदी भारतीय जनता पार्टी के प्रधानमंत्री के उम्मीदवार होगें और इस फ़ैसले को टाला नहीं जा सकता, तो मैंने भारतीय जनता पार्टी से 17 साल पुराने रिश्ते तोड़ लिए. चुनाव के दौरान सांप्रदायिक ध्रुवीकरण न हो इस वजह से मैने कभी नरेंद्र मोदी को बिहार में प्रचार करने की अनुमति नहीं दी. यह राजनीतिक फ़ैसला नहीं था, बल्कि यह मूल्यों की राजनीति थी. हमें पता था कि हम बिना गठबंधन के कमज़ोर हो जाएंगे. यह तो साफ़ था कि मेरी सरकार अल्पमत में आ जाएगी. फिर भी मैंने यह फ़ैसला लिया, क्योंकि मुझे भरोसा था अपने कामों पर और अपने मूल्यों पर. हमें खुशी है कि हमारा फ़ैसला सही था. जिन वजहों से मैंने भारतीय जनता पार्टी से रिश्ता ख़त्म किया, वे सभी बातें सही साबित हुईं. भाजपा में आज जिस तरह की भाषा का इस्तेमाल हो रहा है और जिस राजनीतिक संस्कृति का निर्माण हो रहा है, वह अटल बिहारी वाजपेयी के जमाने से बिल्कुल अलग है.

चुनाव के दौरान हमने सारी मर्यादाओं को क़ायम रखी. मैं नीतियों पर बात करता रहा. हमारी सरकार ने जो किया उसी के बदौलत मैं वोट मांग रहा था, जबकि बाकी दल एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगा रहे थे. मेरे उपर व्यक्तिगत टिप्पणियां हुईं, इसके बावजूद मैंने अपनी मर्यादा बरक़रार रखी. मैंने जो काम किए उसी पर वोट मांगे, लेकिन चुनाव में जिस तरह सांप्रदायिक ध्रुवीकरण हुआ, वह देश के लिए ठीक नहीं है. मैं धर्म के नाम पर राजनीति नहीं कर सकता. मैं तो सिर्फ सामाजिक समरसता की राजनीति जानता हूं. इसके लिए ही मैंने अपनी पार्टी और सरकार को दांव पर लगा दिया. मैं राजनीति में सत्ता के लिए नहीं आया. न ही मैं किसी पद या कुर्सी के लिए राजनीति में आया. अगर मूल्यों की राजनीति नहीं करनी होती तो मैं भारतीय जनता पार्टी से कभी अलग नहीं होता.

हमने मर्यादित तरीक़े से कैंपेन किया. हमने जो काम किया उसी पर वोट मांगे. हमें उम्मीद थी कि बिहार की जनता पिछले साढ़े सात सालों के कामों को याद रखेगी. बच्चियों और महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए जो कुछ मैंने किया, उसे सराहा जाएगा. भ्रष्टाचार को ख़त्म करने के लिए मेरी सरकार ने जो कदम उठाए और देश में सबसे पहले सिटीजन चार्टर क़ानून बनाया, उसे लोग याद रखेंगे. मैंने ध्रुवीकरण की राजनीति नहीं की और न ही मैं ऐसा कर सकता हूं. गांवों को अधिक शक्ति मिले और गांवों को केंद्र में रखकर योजनाएं बनाई जाए, इस बात पर मैं वोट मांग रहा था. वे सारी बातें जिसके लिए अन्ना हजारे ने देश में आंदोलन किया मैं वही करना चाहता था. जो काम मैं नहीं कर पाया और जिसे मैं करना चाहता हूं, उसमें गांव को केंद्र मान कर स्थानीय उपज के आधार पर छोटे-छोटे उद्यागों का जाल बिछाना चाहता हूं. हर गांव में दो मेगावाट के विद्युत केंद्र स्थापित करना चाहता हूं, ताकि अगले 25 सालों तक बिजली की कमी न रहे. मैं यह भी चाहता था कि हाई स्कूल और कॉलेज को उद्योग से जोड़ा जाए, ताकि युवाओं को नौकरी के लिए इधर-उधर भटकना न पड़े और वे अपना व्यवसाय स्वयं शुरु कर सकें. मुझे यकीन था कि लोग मेरे वादों पर भरोसा करेंगे. इस यकीन के पीछे मेरा साढ़े सात साल का काम था. मुझे यह पूरा भरोसा था कि जिन मूल्यों की वजह से मैंने बीजेपी से रिश्ता तोड़ा, जनता उसका समर्थन करेगी. समाज के हर वर्ग के लोग जो धार्मिक और सामाजिक समरसता को महत्व देते हैं, वे हमारे साथ खड़े होंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ.

निश्चित रूप से लोकसभा चुनाव में हमें अपेक्षित समर्थन नहीं मिला, इसलिए उसकी ज़िम्मेदारी लेते हुए मैंने मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया. हमने विधानसभा को भंग करने की मांग नहीं की. जनादेश का सम्मान होना चाहिए, इसीलिए जनादेश का सम्मान भी किया है और जो जनादेश सामने है, वह भारतीय जनता पार्टी के लिए है. अब उन्हें सरकार चलाना है. युवा पीढ़ी को जो सपने दिखाए गए हैं, वह पूरे किए जाएं. हम भी यही उम्मीद करेंगे कि अच्छे दिन आ गए हैं और अच्छे दिन का अनुभव सब लोग करेंगे. हमारी पूरी शुभकामना है. ■

-नीतीश कुमार की काल्पनिक चिट्ठी

डॉ. मनीष कुमार
manish@chauthiduniya.com

राज्य	नोटा
दमन एवं द्वीव	1316(1.5%)
गोवा	10103(1.2%)
गुजरात	454880(1.8%)
हरियाणा	34225(0.3%)
हिमाचल प्रदेश	29156(0.9%)

माया और मुलायम

राजनीतिक अर्श से फ़र्श पर

नवीन चौहान

16 वीं लोकसभा के लिए हुए आम चुनावों को भारतीय राजनीति में कई मायनों में याद किया जाएगा. उनमें सबसे प्रमुख उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय दलों का अवसान होगा. मोदी नाम की सुनामी के सामने प्रदेश क्षत्रप ढेर हो गए. समाजवाद के आधुनिक पुरोधा मुलायम सिंह और सर्वजन सुखाय की नाव पर सवार मायावती की नैया भी मोदी लहर में पार नहीं हो सकी. समाजवादी पार्टी ने परिवारवाद के बल पर कुछ सीटें बचा लीं, लेकिन बहुजन समाज पार्टी अपना खाता भी नहीं खोल पाईं. मायावती लोकसभा में राजनीतिक शून्य पर पहुंच गईं. इसके साथ ही अजीत सिंह के राष्ट्रीय लोकदल को भी मुंह की खानी पड़ी. पूर्वांचल में भारतीय जनता पार्टी ने अपना दल के साथ गठबंधन किया था, गठबंधन का फायदा अपना दल को हुआ और वह दो सीटें जीतने में कामयाब हुई. इन चुनावों के बाद भारतीय राजनीति का एक नया चाल, चरित्र और चेहरा उभर कर सामने आया है, जिसमें केंद्र की राजनीति में अच्छा खासा दखल रखने वाली सपा और बसपा की भूमिका नगण्य हो गई है. पिछले लोकसभा में बसपा और सपा 21- 21 सीटें जीतकर कांग्रेस और बीजेपी के बाद तीसरी सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टियां थीं. यूपीए-2 सरकार बाहर से समर्थन दे रही इन दोनों पार्टियों के सांसदों पर टिकी थी. लेकिन मोदी के अच्छे दिन इन दोनों पार्टियों के लिए बुरे दिन साबित हो गए.

चुनावी आंकड़ों पर नज़र डाली जाए तो मालूम होता है कि उत्तर प्रदेश में सत्तारूढ़ समाजवादी पार्टी को प्रदेश में 22.2 प्रतिशत और बहुजन समाज पार्टी को 19.7 प्रतिशत वोट मिले हैं. दोनों ही पार्टियां मिलकर भी भारतीय जनता पार्टी की बराबरी नहीं कर पाईं. भाजपा ने उत्तर प्रदेश में कुल वोटों में से 43.3 प्रतिशत वोट हासिल किए. इसका मतलब यह है कि मायावती अपना पारंपरिक दलित वोट और मुलायम सिंह, यादव बिरादरी के वोट हासिल करने में कामयाब हुए. जिस मुस्लिम

वर्ष	सीटों की संख्या (बसपा)	(सपा)
1989	03	-
1991	02	-
1996	11	20
1998	05	21
1999	14	26
2004	19	36
2009	21	21
2014	00	05

वोट बैंक को लेकर प्रदेश में रस्साकशी हो रही थी, वह वोट कांग्रेस और इन दोनों पार्टियों के बीच बंट गया. बसपा उत्तर प्रदेश में 34 सीटों पर दूसरे स्थान पर रही. समाजवादी पार्टी ने पांच सीटों पर विजय हासिल की और 31 सीटों पर दूसरे पायदान पर रही. संसद में सपा का दायरा परिवार तक ही सीमित रह गया. मुलायम मैनपुरी और आजमगढ़ से, बहु डिंपल कन्नौज से, भतीजे धर्मेंद्र बदायूं से और अक्षय फिरोज़ाबाद से जीतने में सफल हुए. मायावाती का सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय का नारा एक बार फिर फुस्स हो गया. उनकी सोशल इंजीनियरिंग धरी की धरी रह गई. उत्तर प्रदेश में 2012 के विधानसभा चुनाव में बीजेपी को महज 47 सीटें और कुल 15 प्रतिशत मत हासिल हुए थे. दो साल बाद उसी भाजपा ने अमित शाह के नेतृत्व में करिश्माई प्रदर्शन किया और 73 लोकसभा सीटों पर पार्टी का परचम लहराया. भाजपा के मत प्रतिशत में 18 प्रतिशत का जबरदस्त उछाल आया. भाजपा ने सपा और बसपा दोनों के वोटों में सेंध लगाई. दोनों ही पार्टियों को इसकी आहट भी नहीं हुई. सपा 29 प्रतिशत से 22 प्रतिशत और बसपा 26 से 19.7 प्रतिशत पर आ गई. सपा बेरोज़गारी भत्ता और लैपटॉप बांटकर युवाओं का वोट पाने की कोशिश कर रही थी. मोदी सिर्फ विकास और रोजगार के नाम पर युवाओं को अपनी ओर खींचने में कामयाब हुए. यह बात उत्तर प्रदेश में हर कोई जानता है कि उनका राज्य देश के सबसे पिछड़े राज्यों में आता है. उत्तर प्रदेश में वोट बैंक की राजनीति से इतर युवाओं ने जाति, धर्म और समुदाय पर आधारित राजनीति को नकार कर विकास के नाम पर वोट दिया है. हर साल उत्तर प्रदेश के लाखों युवक गुजरात नौकरी की तलाश में जाते हैं, वे गुजरात के विकास से वाकिफ हैं, इसलिए उन्होंने विकास के नाम पर वोट दिया. युवा रोजगार अपने घर में चाहते हैं. इस मोर्चे पर उत्तर प्रदेश की वर्तमान और पूर्ववर्ती सरकार चलाने वाली पार्टियों के असफल रहने के कारण युवाओं ने भाजपा को मौक़ा दिया. फलस्वरुप उत्तर प्रदेश में भाजपा की ऐतिहासिक विजय हुई.

मुलायम सिंह हर बैठक में अपने कार्यकर्ताओं से प्रधानमंत्री बनाने का आग्रह करते और बंद और खुली आंखों से प्रधानमंत्री बनने के सपने देखते रहे. इसके लिए वह लगातार मुस्लिम तुष्टीकरण का कार्ड खेलते रहे. दो साल पहले विधानसभा चुनावों में जिस जनता ने समाजवादी पार्टी को अर्श पर पहुंचाया था, उसी जनता-जनार्दन ने गलत नीतियों और खोखले वादों को ध्यान में रखते हुए उन्हें फर्श पर भी पहुंचा दिया. उत्तर प्रदेश की क़ानून व्यवस्था का पिछले दो सालों से भगवान ही मालिक है. अखिलेश यादव के नेतृत्व में चल रही समाजवादी सरकार के गठन के बाद उत्तर प्रदेश में हुए सौ से अधिक दंगे इस बात के गवाह हैं कि प्रदेश में सबकुछ ठीक नहीं चल रहा है. सत्ता के कई केंद्र होने की बात भी समय समय पर जगजाहिर होती रही है. शिवपाल यादव से लेकर आज़म ख़ान तक सभी अपने-अपने तरीक़े से सरकार चलाते दिखे. महिला आरक्षण विधेयक पर उनका विरोध और प्रमोशन में आरक्षण का मुद्दा भी उनके लिए मुसीबत बन गया, सरकारी महकमे में काम कर रहे दलित वर्ग के कर्मचारियों का विरोध करने की वजह से भी उन्हें नुक़सान पहुंचा है. मुज़फ्फनगर दंगों में सरकार की भूमिका ने प्रदेश में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण में मदद की, जिसका सीधा फायदा नरेंद्र मोदी को मिला. जिस पिछड़े वर्ग के सहारे अब तक मुलायम की नैया पार लगती रही है, वो वोट बैंक भी उनके हाथ से छिटक गया. जिस मुस्लिम वोट को साधने के लिए मुलायम-माया मोदी को लगातार सांप्रदायिक और देश के लिए ख़तरा बता कर हमले कर रहे थे, उसकी प्रतिक्रिया के रुप में प्रदेश के हिंदू समाज के लोगों ने जात-पात के दायरे से बाहर निकलकर मोदी और भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में वोट किया. दोनों ही पार्टियों को केंद्र की यूपीए-2 सरकार को समर्थन देने की वजह से भी नुक़सान हुआ है. मंहगाई और भ्रष्टाचार के नए-नए मामलों के सामने आने के बाद भी दोनों ही पार्टियों ने केंद्र सरकार को समर्थन देना जारी रखा. सीबीआई की मदद से कांग्रेस दोनों पार्टियों को साधती रही. दोनों पार्टियों के लिए कांग्रेस को समर्थन देना गले की हड्डी बन गया. डूबते जहाज में बैठे दो पंछियों की तरह अब उन्हें पैर रखने की जगह नहीं मिल रही है. हार के बाद बहुजन समाज पार्टी अपना राष्ट्रीय पार्टी का दर्ज़ा भी खो दिया है. बहुजन समाज पार्टी ने देश भर में 474 उम्मीदवार मैदान में उतार थे, इनमें से एक का भी संसद में नहीं पहुंच पाना बसपा के लिए किसी सदमे से कम नहीं है. ऐसी स्थिति में माया और मुलायम को उत्तर प्रदेश में एक बार फिर से ज़मीन तलाशनी होगी. यदि वे अपनी रणनीति में आमूलचूल बदलाव नहीं करेंगे और पारंपरिक राजनीतिक दायरे से बाहर आकर लोगों के हित के लिए काम नहीं करेंगे, तो उनके लिए देश की राजनीति की मुख्य धारा में वापसी करना असंभव हो जाएगा.■

navinchauhan@chauthiduniya.com

क्यों हारे नीतीश और लालू

नरेंद्र मोदी द्वारा खुद को पिछड़ा वर्ग का बताए जाने से भी बिहार का पिछड़ा व अति पिछड़ा वर्ग बीजेपी की तरफ झुका. मुसलमानों के वोट भी जद(यू) और राजद के बीच बंटते चले गए और अंत तक तो यह जद(यू) से शिफ्ट हो कर राजद की ओर चला गया.

शशि शेखर

यह आशंका जताई जा रही थी कि बिहार में भाजपा का विजय रथ थम जाएगा. चुनाव के अंतिम चरण के आते-आते मीडिया में भी यह हवा बन चुकी थी कि लालू यादव बहुत तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं. इसमें किसी को कोई शक नहीं था कि नीतीश कुमार की पार्टी का हश्र ऐसा होगा. लेकिन राजद को लेकर जताई गई तमाम आशंकाए निर्मूल साबित हो गईं. बिहार में भी भाजपा का विजय अभियान जारी रहा. बमुश्किल लालू यादव चार सीटों पर जीत हासिल कर सके. वहीं नीतीश कुमार को दो सीटों से ही संतोष करना पड़ा. सवाल है कि आखिर ऐसा क्यों हुआ? सामान्य तौर पर इसका जवाब यह कह कर दिया जा रहा है कि मोदी लहर के कारण ऐसा हुआ. लेकिन, इसके साथ यह भी देखना होगा कि स्थानीय स्तर पर ऐसी कौन-सी वजहें थीं जिसने बिहार के दो धुरंधरों को पटखनी दे दी.

नीतीश कुमार के लिए पिछले एक साल से यह कहा जा रहा था और तकरीबन सर्वमान्य तथ्य बन चुका था कि भाजपा के साथ गठबंधन तोड़ने का खामियाजा नीतीश कुमार को उठाना पड़ेगा. नीतीश कुमार ने अपने पहले ही शासनकल से सोशल इंजीनियरिंग का काम कर रही थी. नीतीश कुमार का मज़बूत वोटर अति पिछड़ा, महादलित और पासमंदा मुसलमान तबका था. साथ ही बीजेपी के साथ गठबंधन की वजह से जद(यू) को सवर्ण वोट भी मिल रहे थे. लेकिन इस गठबंधन के टूटने की वजह से सबसे पहले सवर्ण मतदाता इससे अलग हुए. इसके बाद लालू यादव के जेल जाने और फिर जेल से बाहर आने के बाद मुसलमानों का एक बड़ा तबका लालू यादव के साथ आ गया. नीतीश कुमार के सिंगल प्वायंट एजेंडा मोदी विरोध की वजह से भी वोटों का ध्रुवीकरण हुआ और इसका खामियाजा नीतीश कुमार को उठाना पड़ा. इसके अलावा भी और कई स्थानीय कारक थे, जिसकी वजह से बिहार की जनता नीतीश सरकार से नाराज़ चल रही थी. इसमें सबसे बड़ा वर्ग ठेके पर नियुक्त किए गए कर्मचारियों का था, जिनमें शिक्षकों की संख्या लाखों में थी. पिछले 2-3 सालों में नीतीश कुमार जिन-जिन ज़िलों में गए वहां के हज़ारों शिक्षकों ने वेतन के मुद्दे पर उन्हें काले झंडे दिखाए गए. जहां तक विकास की बात है, निश्चित तौर पर नीतीश कुमार ने बिहार में विकास के काम कराए लेकिन वे इस मामले में एक सीमा पर जा कर रूक गए या कहें कि उन्हें रूकना पड़ा. खुद जद(यू) के कई सांसद इस संवाददाता से बातचीत में यह स्वीकार चुके हैं कि बिहार में अब आगे कोई काम नहीं हो पा रहा है या उसकी कोई

बिहार का चुनावी गणित

पार्टी	सीट	मत प्रतिशत
बीजेपी	22	29.4 फीसदी
राजद	4	20.1 फीसद
जद(यू)	2	15.8 फीसद
लोजपा	6	6.40 फीसद
रालोसपा	3	03 फीसद
एनसीपी	1	1.2 फीसद
कांग्रेस	2	8.4 फीसद

गुंजाइश नहीं बनती दिख रही है. साथ ही, इस पार्टी के साथ एक और बड़ी समस्या थी मज़बूत संगठन का अभाव. बीजेपी के साथ गठबंधन की वजह से जद(यू) उन जगहों पर भी अपना संगठन खड़ा कर पाने में नाकाम रही, जो सीटें पहले बीजेपी के खाते में थी. इस वजह से भी उसे नुक़सान उठाना पडा. नरेंद्र मोदी द्वारा खुद को पिछड़ा वर्ग का बताए जाने से भी बिहार का पिछड़ा व अति पिछड़ा वर्ग बीजेपी की तरफ झुका. मुसलमानों के वोट भी जद(यू) और राजद के बीच बंटते चले गए और अंत तक तो यह जद(यू) से शिफ्ट होकर राजद की ओर चला गया.

दूसरी तरफ इस चुनाव में जहां यह कयास लगाया जा रहा था कि लालू यादव इस चुनाव में विजेता बन कर उभरेंगे, वहीं ये सारे कयास धरे के धरे रह गए. जद(यू) के वोट बैंक में बिखराव का सबसे अधिक फायदा राजद को मिलता दिख रहा था, लेकिन चुनाव परिणाम ने इन आशंकाओं को ग़लत साबित कर दिया. हालांकि, यह सच है कि सालों बाद एक बार फिर लालू यादव का माई समीकरण काम करता दिखा यानी यादव और मुसलमान एक साथ लालू के पक्ष में आते दिखे लेकिन चुनाव परिणाम ने यह साबित कर दिया कि यादवों का वोट लालू यादव को नहीं मिला या मिला भी तो उसमें अत्याधिक बिखराव हुआ. लालू यादव ने अपने टिकट वितरण में भी माई समीकरण को ही ध्यान में रखा था और अधिकतर सीटों पर इसी वर्ग को मैदान में उतारा था. लेकिन यादव वोट में बिखराव और नीतीश कुमार की तरह ही मोदी विरोध का सिंगल प्वाइंट एजेंडा लालू यादव के लिए भारी पड़ गया. यूपी की तरह ही बिहार में भी भारी मात्रा में वोटों का ध्रुवीकरण हुआ. निश्चित तौर पर एक तरफ मुसलमानों ने बीजेपी को हराने के लिए टैक्टिकल वोटिंग का रास्ता अपनाया और इसका नतीजा ये हुआ कि बाक़ी सारे वोट एक तरफ यानी बीजेपी की ओर चले गए. इसके अलावा, लालू यादव के साथ एक सबसे बड़ी समस्या यह भी है कि वे अभी तक 91 के दौर की राजनीति से बाहर नहीं निकल सके हैं. उनका अहंकार, दंभ और अति आत्मविश्वास ही उनका सबसे बड़ा दुश्मन साबित हुआ. जिस तरीके से उन्होंने चुनाव प्रचार के दौरान एक पुलिस अधिकारी के साथ सलूक किया वो उनके इसी व्यक्तित्व को दिखाता है. सिर्फ सांप्रदायिकता के नाम पर अपनी राजनीति करते रहे लालू यादव इस बार जनता की नब्ज पहचानने में नाकाम रहे. निश्चित तौर पर यह चुनाव परिणाम लालू यादव और नीतीश कुमार को ईमानदारी से राजनीतिक चिंतन करने का मौक़ा दे गया है और यह संदेश भी दे गया है कि बदलते वक्त के साथ राजनीति में बने रहने के लिए खुद को और अपनी राजनीति को भी बदलना होगा.■

shashishekhar@chauthiduniya.com

राज्य	नोटा
जम्मू-कश्मीर	31550 (0.9%)

राज्य	नोटा
झारखण्ड	190927(1.5%)

राज्य	नोटा
कर्नाटक	257873 (0.8%)

राज्य	नोटा
केरल	210561(1.2%)

राज्य	नोटा
लक्षद्वीप	123(0.3%)

राज्य	नोटा
मध्यप्रदेश	391837(1.3%)

राज्य	नोटा
महाराष्ट्र	433180(0.9%)

राज्य	नोटा
मणिपुर	7504(0.5%)

राजनीतिक सुनामी महारथियों को बहा ले गई

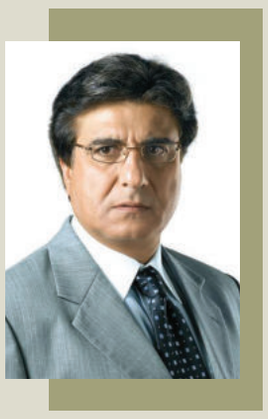

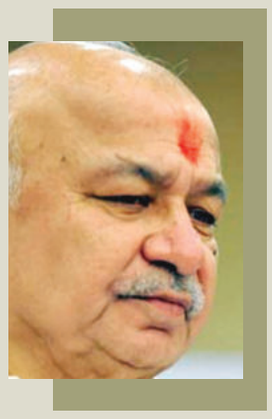
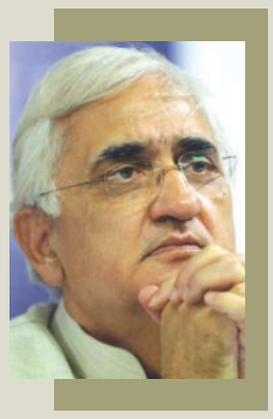
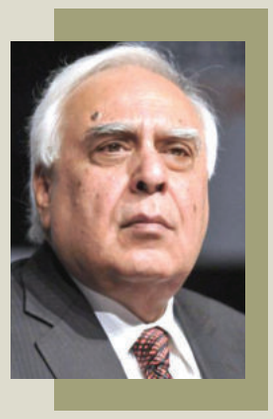

ए.यू. आसिफ

16 वीं लोकसभा चुनाव के नतीजे सही अर्थों में राजनीतिक सुनामी हैं और ये सुनामी निश्चय ही भाजपा और उसके साथी दलों के हक में है. जिस तरह सुनामी में इत्तेफाक से कुछ लोग एवं संपत्ति बच जाती है, ठीक उसी प्रकार कुछ राजनीतिक पार्टियां और उनके गठबंधन बच गए एवं शेष सभी इसमें बह गए. स्वाधीनता के बाद उन्हें 1977 में जनता पार्टी की लहर में इसी तरह का कुछ देखने को मिला था और तब एक विशिष्ट पार्टी कांग्रेस बह गई थी. परंतु 2014 में सिर्फ एक राजनीतिक पार्टी और उसके गठबंधन ही नहीं बल्कि अनेक पार्टियां एवं दूसरे गठबंधन और उनके बड़े-बड़े महारथी करारी हार का शिकार हुए. इस सुनामी की सबसे विशेष बात है कि इसने 1989 से चली आ रही पंगु संसद की कल्पना को ही समाप्त कर दिया है और इसी के साथ-साथ गठबंधन सरकार की आवश्यकता को भी अलविदा कह दिया. इसके अलावा क्षेत्रीय एवं छोटी पार्टियों को सिमटने पर मजबूर कर दिया. चुनाव के नतीजे पर जहां एक ओर प्रभावित पार्टियां एवं उनके गठबंधन चकित है वहीं दूसरी ओर विजयी भाजपा भी प्रसन्नता से फूली नहीं समा रही है और इस विजय के समय संतुलन से काम लेते हुए कह रही है कि हमें बहुमत तो निश्चय मिल गया है परंतु हमें राष्ट्र को चलाने के लिए समर्थन की आवश्यकता है. बहरहाल यह एक अच्छा एवं स्वागतयोग्य रुझान है. इसे हर हाल में कायम रहना चाहिए. ये लोकतंत्र एवं स्वयं पूरे राष्ट्र के हित में है. इसके अलावा खास बात यह भी हुई कि इस बार नोटा अर्थात किसी को भी वोट नहीं का सिलसिला शुरू हुआ, उसका भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि जनता ने पार्टियों में अविश्वास के रुझान को खत्म करके किसी एक विशिष्ट पार्टी और उसके गठबंधन को सामुहिक रूप से पसंद किया. भारत जैसे बड़े राष्ट्र में मात्र 60 लाख से अधिक नोटा वोट डाले गए जो कि कुल डाले गए वोट का मात्र 1.1 प्रतिशत है. वैसे रिजर्व क्षेत्र में इसका कुछ उपयोग देखा भी गया.

आइए अब विश्लेषण करते हैं कि इस राजनीतिक सुनामी में कौन कौन राजनीतिक पार्टियां और उनके गठबंधन बुरी तरह प्रभावित हुए और कौन-कौन से राजनीतिक महारथी नेस्तनाबूत हुए. वैसे भाजपा और उसके गठबंधन के हित में इस सुनामी ने स्वयं उन्हें भी चौंका दिया है क्योंकि इस सूनामी ने स्वयं अपने काबिले जिक्र महारथी अरुण जेटली एवं मुस्लिम चेहरे शाहनवाज हुसैन जैसे लोगों को भी नहीं बख्शा और वो भी अपनी अपनी सीट को बचा नहीं पाए. ऐसे ही अवसर पर एक चीनी कहावत याद आती है कि जब क्रांति आती है तो वह अपने बच्चों को भी खा जाती है और यही सबकुछ इस राजनीतिक सूनामी में भी हुआ है.

इस सूनामी में राष्ट्र का सबसे बड़े राजनीतिक गठबंधन यूपीए सर्वाधिक प्रभावित हुआ है. यही हार लेफ्ट फ्रंट का भी हुआ है. बहुजन समाज पार्टी, असम गण परिषद, ऑल इंडिया फारवार्ड ब्लॉक, बोडोलैंड पीपुल फ्रंट, बहुजन विकास आगाडी, नेशनल कांफ्रेन्स, झारखंड विकास मोर्चा, एमडीएमके एवं राष्ट्रीय लोक दल जैसी प्रसिद्ध क्षेत्रीय पार्टियां 16वीं लोकसभा से लुप्त हो गई है और 10 पार्टियां मात्र एक सांसद पाकर मुश्किल से अपनी जान बचा पाई. इसके अलावा राष्ट्र के सबसे पुरानी पार्टी कांग्रेस 2009 में 28.6 प्रतिशत से 19.4 प्रतिशत वोट एवं 206 सीट से 44 सीट पर सिमट गई. यही गिरावट अन्य बड़ी छोटी पार्टियों में भी देखने को मिली. भाजपा के लिए यह गौरव की बात है कि 2009 में 18.8 प्रतिशत वोट एवं 116 सीट से बढ़ कर 31.2 प्रतिशत और 282 सीट पर पहुंच कर रिकॉर्ड बनाया. इस लिहाज से ये सूनामी कांग्रेस, बीएसपी, जदयू, एनसीपी, एसपी, सीपीएम एवं आम आदमी पार्टी जैसी पार्टियों के लिए शोचनीय है कि उनके नेता इसे कैसे बचा पाते.

जहां तक विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के महारथियों का मामला है उनमें करारी हार खानेवाले बनारस से आम आदमी पार्टी के कन्वेनर अरविंद केजरीवाल, गुड़गांव से योगेंद्र यादव, मुंबई नोर्थ इस्ट से मेधा पाटकर, अमेठी से कुमार विश्वास, चंडीगढ़ से गुलपनाग, चांदनी चौक से आशुतोष, पूर्वी उत्तरी दिल्ली से प्रो. आनंद कुमार, पूर्वी दिल्ली से राजमोहन गांधी, गाजियाबाद से शाजिया इल्मी, बहुजन समाज पार्टी के घोसी से दारा सिंह चौहान, मुजफ्फरनगर से कादीर राणा, सुल्तानपुर से पवन पांडेय, शाहजहांपुर से उमेद सिंह, सपा के रामपुर से नशीद अहमद खां, नोर्थ सेंट्रल मुंबई से फरहान आजमी, डीएमके के दक्षिणी चैन्नई से टीके एस ऐलान गोवन, नागापट्टिनम से एके एस विजेन, अरक्कुनम से एनआर ऐलानगु, पोल्लाची से पुनगल्लुर एन पलानी सामी, थेनी से मुथू रमालंगम, जनता दल यूनाइटेड के मधेपुरा से शरद यादव, पश्चिमी चंपारण से प्रकाश झा, सासाराम से केपी रमैया, जमुई से उदय नारायण चौधरी, जहांनाबाद से अनील कुमार शर्मा, एनसीपी के भंडारागोंडीया से प्रफुल्ल पटेल, नासिक से छगन भुजबल, राजद के सारण से राबड़ी देवी, पाटलिपुत्र से मिर्जा भारती, मधुबनी से अब्दुल बारी सिद्दिकी, आरा से भगवान सिंह कुशवाहा, तृणमूल के दार्जिलिंग से भाइचुंग भुटिया, आरएलडी के बागपद से अजीत सिंह, नेशनल कांफरेन्स से श्रीनगर से डॉ फारुख अब्दुला, कांग्रेस के चांदनी चौक से कपिल सिब्बल,नई दिल्ली से अजय माकन, अजमेर से सचिन पायलट, गाजियाबाद से राज बब्बर, लखनऊ ने रिता बहुगुना जोशी, शोलापुर से सुशील कुमार शिंदे, सासाराम से मिराकुमार, उधमपुर से गुलाम नवी आजाद, फरुखाबाद से सलमान खुर्शीद एवं भाजपा के अमृतसर से अरुण जेटली और भागलपुर से शहनवाज हुसैन के नाम काबिले जिक्र हैं.

सफलता एवं असफलता का मुंह देखने वाले इन महारथियों में भारतीय राजनीति के कई प्रसिद्ध परिवार भी शामिल है. गौरतलब बात एक और है कि नेहरू गांधी परिवार के भाजपा के वरुण गांधी (सुलतानपुर) एवं उनकी माता मेनका गांधी (पीलीभित) ने जहां सफलता पाई, वहीं इस परिवार के कांग्रेस के राहुल गांधी (अमेठी) और उनकी माता सोनिया गांधी (रायबरेली) ने भी अपने पहले की जीत को दो-हराया. व्यक्तिगत एवं परिवारिक तौर पर नेहरू-गांधी परिवार ने सिद्ध कर दिया कि वो जहां भी था और जिस पार्टी में भी था सफल हुआ. परंतु इस कटू सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि नेहरू-गांधी परिवार के राहुल गांधी एवं सोनिया गांधी के साथ साथ राहुल की प्यारी बहन प्रियंका गांधी नेहरू गांधी परिवार की पार्टी कांग्रेस को करारी हार से बचा नहीं पाए एवं वो 2009 में 28.6 प्रतिशत से 2014 में 19.4 प्रतिशत एवं 2009 में 206 सीट से 44 सीट पर पहुंचा दी गई. ये बात भी महत्व है कि इस परिवार के अलावा मुलायम सिंह यादव और उनके परिवार ने भी पांच सीटों पर जीत दर्ज करा कर उत्तर प्रदेश में सपा की लाज रख ली. स्मरण रहे कि समय मुलायम सिंह यादव आजमगढ़ एवं मैनपुरी, उनकी बहु डीमपले यादव कनौज, दो भतीजे अक्षय यादव, धर्मेंद्र यादव फिरोजाबाद एवं बदायूं से निर्वाचित हुए परंतु ये भी सपा को पतन की ओर जाने से रोक नहीं सके. रामविलास पासवान एवं उनके परिवार के तीन सदस्य हाजिपुर से स्वयं रामविलास पासवान, समस्तीपुर से भाई रामचंद्र एवं बेटे चिराग पासवान सफल रहे. सारण से लालू यादव की पत्नी राबड़ी देवी एवं बेटी मीसा का भी बुरा हश्र हुआ. राष्ट्रीय लोकस दल की सुप्रीमो अजीत सिंह बागपत से एवं उनके बेटे जयंत चौधरी मथुरा से हारे. इसी तरह जम्मू और काश्मीर में नेशनल कांफ्रेन्स के डॉ फारुख अब्दुला श्रीनगर और उनके दमाद सचिन पायलट अजमेर से निर्वाचित नहीं हो पाए.

प्रश्न ये है कि अब इन महारथियों का क्या होगा? क्या वो इन करारी हारों से बाहर निकल भी पाएंगे? क्या वो अपनी अपनी बड़ी एवं छोटी पार्टी को बचा भी पाएंगे?

इन महारथियों की किस्मत का फैसला तो 2014 चुनाव ने कर दिया. इन सबका जो हश्र हुआ, इसके लिए वे खुद जिम्मेदार है. इन्होंने अतीत में अपनी अपनी सफलता के बाद अपने अपने चुनावी क्षेत्र की जनता के साथ केवल खिलवाड़ किया है एवं उनके हित और विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया है बल्कि अपने निजी एवं पारिवारिक हित में ज्यादा उलझे रहे हैं. यह चुनाव इन सबके लिए पाठ है. ये भी प्रश्न है कि जनता के द्वारा ठुकराए गए ये तमाम महारथी क्या इससे कोई पाठ भी ले पाएंगे? ■

feedback@chauthiduniya.com

जनता के द्वारा ठुकराए गए जानेमाने महारथियों की सूची

नाम	पार्टी	क्षेत्र
कपिल सिब्बल	कांग्रेस	चांदनी चौक
सुशील कुमार शिंदे	कांग्रेस	शोलापुर
सलमान खुर्शीद	कांग्रेस	फर्रुखाबाद
गुलाम नबी आजाद	कांग्रेस	उधमपुर
सचिन पायलट	कांग्रेस	अजमेर
अजय माकन	कांग्रेस	नई दिल्ली
राज बब्बर	कांग्रेस	गाजियाबाद
रीता बहुगुणा जोशी	कांग्रेस	लखनऊ
मीरा कुमार	कांग्रेस	सासाराम
डॉ. फारुक अब्दुला	नेशनल कांफ्रेंस	श्रीनगर
अरुण जेटली	भाजपा	अमृतसर
शाहनवाज हुसैन	भाजपा	भागलपुर
शरद यादव	जदयू	मधेपुरा
प्रकाश झा	जदयू	पश्चिमी चंपारण
प्रफुल्ल पटेल	एनसीपी	भंडारा गोंदिया
राबड़ी देवी	राजद	सारण
मीसा भारती	राजद	पाटलिपुत्र
अजीत सिंह	राष्ट्रीय लोक दल	बागपत
अरविंद केजरीवाल	आम आदमी पार्टी	वाराणसी
योगेंद्र यादव	आम आदमी पार्टी	गुड़गांव
मेधा पाटकर	आम आदमी पार्टी	मुंबई नॉर्थ इस्ट
कुमार विश्वास	आम आदमी पार्टी	अमेठी
राजमोहन गांधी	आम आदमी पार्टी	पूर्वी दिल्ली
प्रो. आनंद कुमार	आम आदमी पार्टी	पूर्वी उत्तरी दिल्ली
आशुतोष	आम आदमी पार्टी	चांदनी चौक
शाजिया इल्मी	आम आदमी पार्टी	गाजियाबाद
गुल पनाग	आम आदमी पार्टी	चंडीगढ़
कादिर राणा	बसपा	मुजफ्फनगर
टीके एस एलान गोवन	डीएमके	दक्षीण चेन्नई

इस सूनामी में राष्ट्र का सबसे बड़े राजनीतिक गठबंधन यूपीए सर्वाधिक प्रभावित हुआ है. यही हार लेफ्ट फ्रंट का भी हुआ है. बहुजन समाज पार्टी, असम गण परिषद, ऑल इंडिया फारवार्ड ब्लॉक, बोडोलैंड पीपुल फ्रंट, बहुजन विकास आगाडी, नेशनल कांफ्रेन्स, झारखंड विकास मोर्चा, एमडीएमके एवं राष्ट्रीय लोक दल जैसी प्रसिद्ध क्षेत्रीय पार्टियां 16वीं लोकसभा से लुप्त हो गई है और 10 पार्टियां मात्र एक सांसद पाकर मुश्किल से अपनी जान बचा पाई.

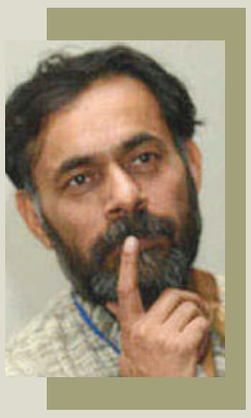

चौथी दुनिया CHAUTHI DUNIYA CHAUTHI DUNIYA چوتھی دنیا First International Urdu Weekly

चौथी दुनिया की हर खबर अब आपके Android फोन पर भी उपलब्ध,
Play Store से Download करें | CHAUTHI DUNIYA APP

प्रमुख महिला प्रत्याशी जिन्होंने चुनाव में जीत हासिल किया है.

हेमामालिनी
भाजपा(मथुरा, उत्तर प्रदेश)

राज्य	नोटा
मेघालय	30145(2.8%)

राज्य	नोटा
मिजोरम	6495(1.5%)

राज्य	नोटा
नगालैंड	2696(0.3%)

राज्य	नोटा
केंद्र शासित प्रदेश दिल्ली	39690(0.5%)

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

आम आदमी पार्टी ने इतिहास रचा

प्रजातंत्र में चुनाव सिर्फ सरकार बनाने की प्रक्रिया नहीं है. यह राजनीतिक दलों की नीतियां, संगठन और नेतृत्व की परीक्षा भी है. यह राजनीतिक दलों के चाल चरित्र और चेहरे को भी उजागर करता है. चुनाव नतीजे ने आम आदमी पार्टी की कमर तोड़ दी. पार्टी को न सिर्फ शर्मनाक हार का सामना करना पड़ा बल्कि पार्टी के विरोधाभास को भी उजागर कर दिया. आम आदमी पार्टी की नीतियों, संगठन और नेतृत्व के विरोधाभास सामने आ गए. यह समझना जरूरी है कि भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने और व्यवस्था परिवर्तन के लिए राजनीति में आने का दावा करने वाली इस पार्टी को देश की जनता ने सिरे से क्यों खारिज कर दिया? दिल्ली विधानसभा चुनाव में पूरे देश में नायक बने अरविंद केजरीवाल को जनता ने क्यों नकार दिया? पार्टी से क्या गलतियां हुई? चुनाव नतीजे ने आम आदमी पार्टी को क्या संकेत दिए हैं?

डॉ. मनीष कुमार

चुनाव नतीजे आने के बाद कांग्रेस के उपाध्यक्ष राहुल गांधी ने हार की जिम्मेदारी ली. यूपीए की चेयरपर्सन सोनिया गांधी ने खुद को जिम्मेदार बताया. बहुजन समाज पार्टी की सुप्रीमो मायावती ने हार की जिम्मेदारी ली. उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री अखिलेश ने माना कि चूक हो गई. सिर्फ अकेले अरविंद केजरीवाल हैं जिन्होंने कहा कि यह उनकी हार नहीं है. पार्टी ने बेहतर प्रदर्शन किया. जबकि हकीकत यह है कि सभी नामचीन पार्टियों में सबसे ज्यादा शर्मनाक हार आम आदमी पार्टी की हुई है. आम आदमी पार्टी ने 443 उम्मीदवार खड़े किए थे. इनमें से 421 सीटों पर पार्टी की जमानत जब्त हो गई. बनारस में केजरीवाल की बड़ी हार हुई लेकिन जमानत बच गई. दिल्ली और पंजाब के बाहर, केजरीवाल के अलावा जितने भी बड़े-बड़े नेता थे उनकी जमानत जब्त हो गई. चाहे वो तमिलनाडु में उदय कुमार हों या मुंबई में मेधा पाटेकर, मीरा सान्याल, मयंक गांधी हों. या फिर नागपुर में अंजली दमानिया हों या फिर बड़गढ़ ओडिशा से लिंगराज प्रधान हों. इन सभी की जमानत जब्त हो गई. आम आदमी पार्टी के ये नेता मीडिया में छाए रहे. टीवी में आम आदमी पार्टी के समर्थक रिपोर्टर और संपादकों के जरिए यह अभियान चलाया गया कि ये लोग नई किस्म की राजनीति करने आए हैं. ऐसा माहौल बनाया गया था ये लोग जीत रहे हैं लेकिन जब गिनती शुरू हुई तो पता चला कि मीडिया में इतना तूफान मचाने के बावजूद ये लोग कुछ हजार वोट ही पा सके.

दिल्ली में केजरीवाल और आम आदमी पार्टी जीत से कई लोगों को लगने लगा था कि भारत की राजनीति में एक नई शुरुआत हुई है. लेकिन 49 दिनों की सरकार में आम आदमी पार्टी की पोल खुल गई. कांग्रेस से मदद लेकर सरकार बनाने पर केजरीवाल की काफी निंदा हुई. केजरीवाल ने लोकलुभावन कुछ फैसले लिए लेकिन ये सब अप्रैल तक ही था इसलिए लोगों को इन फैसलों का फायदा नहीं पहुंचा. अरविंद केजरीवाल एक ऐसे मुख्यमंत्री बनकर उभरे जिनके पास न कोई योजना थी, न प्रशासनिक क्षमता, न राजनीतिक अनुभव और न ही समस्याओं का कोई समाधान था. 49 दिनों के कार्यकाल में पार्टी की तरफ से दिए गए बयान व क्रियाकलापों से उन्होंने ये साबित कर दिया कि वो एक अनुभवहीन नेता हैं जो राजनीति को छात्रसंघ की तरह चलाना चाहते हैं. लोग निराश होने लगे थे. लोगों का भरोसा टूट रहा था. इस बीच, उनके एक मंत्री की खबर मीडिया की सुर्खियां बन गई. पता चला कि उन्होंने विदेशी महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार किया है. जब ऐसा लगने लगा कि वो गिरफ्तार होने वाले हैं तो केजरीवाल ने धरना का नाटक शुरू किया. सड़क पर रात बिताई. गैरजिम्मेदार बयान दिए. गणतंत्र दिवस परेड का मजाक उड़ाया. खुद को अराजक बताया. यहीं से केजरीवाल की उल्टी गिनती शुरू हो गई. देश में चुनाव होने वाले थे और आम आदमी पार्टी के पास केजरीवाल के अलावा कोई दूसरा नेता नहीं था जो समूचे देश में कैंपेन कर सके. जिसे सुनने सौ लोग भी आएं.

लोकसभा की रणनीति बनी. पहले यह तय हुआ कि जितने भी भ्रष्ट नेता हैं उनके खिलाफ आम आदमी पार्टी उम्मीदवार खड़ा करेगी. अगर ऐसा होता तो शायद पार्टी आज पार्टी बेहतर स्थिति में होती. लेकिन केजरीवाल से एक गलती हो गई. उन्होंने राजनीतिक माहौल को समझने में और पार्टी की क्षमता का गलत आंकलन किया. पार्टी को लगा कि जिस तरह से दिल्ली में उन्हें सफलता मिली है उसी तरह पूरे देश में सफलता मिल जाएगी. रणनीति यह बनी कि ज्यादा से ज्यादा सीटों पर चुनाव लड़ा जाए. जिस तरह दिल्ली में बीजेपी और कांग्रेस दोनों के वोटबैंक में पार्टी ने सेंध मार की थी वैसा ही पूरे देश में होगा. खुद चुनाव जीतें या न जीतें लेकिन किसी पार्टी को बहुमत नहीं मिलेगा. केजरीवाल की नजर प्रधानमंत्री की कुर्सी पर थी. उन्हें लगा कि अगर 40-50 सीटें भी आ गईं तो कांग्रेस की मदद से वो सरकार बनाने में सफल हो जाएंगे और प्रधानमंत्री बन जाएंगे. आम आदमी पार्टी से सबसे बड़ी चूक यह हुई कि उन्होंने दिल्ली को मिनी इंडिया मान लिया. उन्हें लगा कि जैसा दिल्ली में हुआ, वैसा ही पूरे देश में होगा. और जिस तरह उन्होंने शीला दीक्षित को हराया वैसे ही वो गुजरात के बाहर नरेंद्र मोदी को हरा देंगे. पार्टी ने 443 उम्मीदवार मैदान में उतार दिए. केजरीवाल खुद वाराणसी में मोदी को चुनौती देने पहुंच गए और कुमार विश्वास को अमेठी में राहुल गांधी के खिलाफ खड़ा कर दिया. मीडिया से मदद मिली. एक माहौल तैयार हुआ. ठीक वैसा ही जैसा दिल्ली चुनाव के दौरान हुआ था.

आम आदमी पार्टी अतिआत्मविश्वास की शिकार हो गई. केजरीवाल इसका आंकलन नहीं कर सके कि नरेंद्र मोदी और शीला दीक्षित में क्या फर्क है. मोदी को बनारस में घेरने से पहले वो गुजरात भी गए. मीडिया की सुर्खियों में बने रहने के लिए हर संभव प्रयास किया. गुजरात मॉडल पर सवाल खड़े किए और खुद को मोदी के सबसे बेहतर विकल्प के रूप में पेश करने की कोशिश की. इस रणनीति के पीछे दो दलील थी. एक तो इससे मुस्लिम वोट आम आदमी पार्टी की तरफ आएगा और दूसरा यह कि चुनाव के बाद प्रधानमंत्री बनने में मदद मिलेगी. प्रधानमंत्री बनने के लिए केजरीवाल इतना आतुर हो गए कि वो उल्टे-पुल्टे बयान देने लग गए. उन्होंने तो यहां तक कह दिया कि देश में अस्थिर सरकार की जरूरत है. जनता ने केजरीवाल की चालबाजी को पहचान लिया. इसलिए जब नतीजा आया तो हर तरफ जमानत जब्त की झड़ी लग गई. आम आदमी पार्टी ने जमानत जब्त कराने का विश्व रिकार्ड कायम किया. अबतक ये विश्व रिकार्ड भारत की ही दूरदर्शी पार्टी के नाम था. इस पार्टी ने 1991 के लोकसभा चुनाव में 321 उम्मीदवारों को खड़ा किया था और सभी की जमानत जब्त हो गई. तब से ये रिकार्ड इस पार्टी के नाम था. लेकिन 2014 के चुनाव में केजरीवाल की पार्टी ने अपने 421 उम्मीदवारो के जमानत जब्त करा इस रिकार्ड को ध्वस्त कर दिया. समझने वाली बात यह है कि भारत में चुनाव की दृष्टि से जिस किसी उम्मीदवार की जमानत जब्त हो जाती है तो उसे सिर्फ हारा हुआ यानि लूजर ही नहीं मानते बल्कि ऐसे उम्मीदवार को नॉन-सीरियस समझा जाता है. लोकसभा चुनाव में हर उम्मीदवार को नामांकन के साथ 25000 रुपये (सुरक्षित सीट के लिए 12,500 रुपये) जमा करने पड़ते है. अगर उस उम्मीदवार को 1/6 यानि कि 16.66 फीसदी वोट से कम मिलता है तो यह पैसा वापस नहीं होता है. यह कानून इसलिए बनाया गया ताकि नॉन-सिरियस उम्मीदवार चुनाव न लड़ें और चुनाव की गंभीरता बरकरार रहे. इस दृष्टि से अगर देखें तो किसी भी उम्मीदवार के लिए यह शर्मनाक है.

हालांकि, केजरीवाल की प्लानिंग यह थी कि मोदी के खिलाफ लड़कर मीडिया में छाए रहेंगे. मीडिया में छाने में तो सफलता मिली. लेकिन जनता को यह रास बिल्कुल नहीं आया. सौ सीटें लाने का दावा करने वाली पार्टी सिर्फ पंजाब में चार सीटें जीत पाई. पंजाब की कहानी भी अलग है. वहां पार्टी की वजह से जीत नहीं हुई. केजरीवाल एक ही बार रोड शो करने गए. कहीं भी रैली करने की हिम्मत नहीं हुई. पंजाब में लोग कांग्रेस और बीजेपी दोनों से नाराज हैं. कांग्रेस के खिलाफ भ्रष्टाचार को लेकर नाराजगी थी. और अकाली दल सरकार की वजह से बीजेपी भी निशाने पर आ गई. दूसरी बात यह कि वहां आम आदमी पार्टी ने अच्छे उम्मीदवार दिए. तीसरा फायदा अन्ना हजारे की जनतंत्र यात्रा की वजह से हुआ. अन्ना ने पिछले साल पंजाब का दौरा किया था. इस दौरान वो पंजाब हर जिले में गए. यात्रा की वजह से पंजाब में संगठन खड़ा करने में पार्टी को मदद मिली. सबसे अहम बात यह है कि पंजाब में आम आदमी पार्टी के बड़े नेताओं ने ज्यादा हस्तक्षेप नहीं किया. जिस तरह से यूपी एमपी, दिल्ली हरियाणा और बिहार में आम आदमी पार्टी नेताओं ने हस्तक्षेप किया उससे गुटबाजी जमकर हुई जिसका नुकसान नतीजे में दिखा. इसलिए कहा जा सकता है कि पंजाब की जीत में पार्टी और पार्टी के नेताओं का कोई ज्यादा योगदान नहीं है.

केजरीवाल बनारस में लड़ने पहुंचे तो मीडिया में एक माहौल बनाने की कोशिश गई कि जिस तरह राजनारायण ने इंदिरा गांधी को हराया था उसी तरह केजरीवाल भी मोदी को हरा सकते हैं. देश भर के एनजीओ एक्टिविस्ट्स और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने कैंपेन किया. यहां तक कि कई वामपंथी और नक्सली संगठनों ने भी केजरीवाल की मदद की. साथ ही, कई मुस्लिम संगठनों ने केजरीवाल को खुला समर्थन दिया और बनारस जाकर कैंपेन किया. लेकिन जब नतीजे आए तो केजरीवाल तीन लाख सत्तर हजार से ज्यादा वोटों से हार गए. पंजाब और दिल्ली के बाहर ये अकेला लोकसभा क्षेत्र है जहां हार शर्मनाक नहीं है. लेकिन वहीं अमेठी को देखें तो यह यकीन नहीं होता कि कुमार विश्वास को सिर्फ साढ़े पच्चीस हजार वोट मिलेंगे. यकीन इसलिए नहीं होता क्योंकि मीडिया ने ऐसा ख्याली पुलाव बना रखा जिस तरह से कुमार विश्वास पर घंटों कार्यक्रम दिखाए जा रहे थे उससे ये लगता था कि वो राहुल गांधी को हरा देंगे. लेकिन हकीकत नतीजे के रूप में सामने हैं. कुमार विश्वास न सिर्फ हारे बल्कि वो चौथे स्थान पर आए और उनकी जमानत भी जब्त हो गई. यही हाल गाजियाबाद में हुआ. जहां जनरल वी के सिंह के खिलाफ पार्टी ने शाजिया इल्मी को उतार दिया. यह कहना पड़ेगा कि वो यहां से लड़ना नहीं चाहती थीं. वो दिल्ली से लड़ना चाहती थीं और पार्टी ने उनके कैंपेन में ज्यादा मदद भी नहीं की. केजरीवाल वहां प्रचार करने नहीं गए. गाजियाबाद में ही आम आदमी पार्टी की शुरुआत हुई और यहीं इसका कार्यालय रहा. शाजिया इल्मी भी सिर्फ चुनाव नहीं हारीं बल्कि वो तो पांचवे स्थान पर आईं और जमानत भी जब्त हुई. लेकिन सबसे हैरानी तब हुई जब राहुल गांधी के राजनीतिक गुरु रहे और पार्टी के चाणक्य कहे जाने वाले योगेंद्र यादव की गुड़गांव की सीट पर जमानत जब्त हो गई. कहने का मतलब यह है कि मीडिया में सांठगांठ और टीवी डिबेट में शामिल होने से कोई नेता नहीं बन जाता है. आम आदमी पार्टी ने यह गलत साबित किया है कि जो दिखता है वो बिकता है. केजरीवाल साहब को यह समझना पड़ेगा कि चुनाव मीडिया के जरिए नहीं बल्कि संगठन और जनता के बीच काम करने से जीते जाते हैं.

नीतीश कुमार ने हार के बाद इस्तीफा दे दिया. लेकिन आम आदमी पार्टी और केजरीवाल की राजनीति में सदाचार की कमी है. इतनी शर्मनाक हार के बावजूद भी पार्टी अपनी गलती मानने को तैयार नहीं है. केजरीवाल से बेहतर तो राहुल गांधी हैं जिन्होंने कम से कम ये तो कहा कि वो हार के लिए खुद जिम्मेदार हैं. लेकिन केजरीवाल जनता को ही जिम्मेदार बता रहे हैं और इनके समर्थक-पत्रकार व राजनीतिक विश्लेष्क मध्य-वर्ग को ही मूर्ख बता रहे हैं. आम आदमी पार्टी की हार की वजह खराब रणनीति, अनुभवहीन राजनीति और असमर्थ नेतृत्व. आम आदमी पार्टी के बड़बोलेपन की वजह से पार्टी की यह हालत हुई है. एक उदाहरण देता हूं. बनारस में मतदान से ठीक 48 घंटे पहले आजतक चैनल पर एक सर्वे रिपोर्ट आई. इस सर्वे में बताया गया कि केजरीवाल चुनाव हार रहे हैं. केजरीवाल आगबबूला हो गए. आजतक के मालिक अरुण पुरी पर मोदी के हाथों बिक जाने का आरोप लगा दिया. केजरीवाल ने पूछा कि पुरी साहब ने अपनी आत्मा कितने में बेची? भारत में कोई भी नेता मीडिया पर इस तरह के आरोप नहीं लगाता है. भारत में बड़बोलेपन और बदतमीजी की कोई जगह नहीं है. हर किसी को दलाल की संज्ञा दे देना लोगों के गले नहीं उतरता. देश की जनता ने यह संदेश दिया है कि राजनीति एक गंभीर विषय है इसमें ड्रामेबाजी और नॉन-सीरियस राजनीति करने वालों का स्थान नहीं है.■

आम आदमी पार्टी अतिआत्मविश्वास की शिकार हो गई. केजरीवाल इसका आंकलन नहीं कर सके कि नरेंद्र मोदी और शीला दीक्षित में क्या फर्क है. मोदी को बनारस में घेरने से पहले वो गुजरात भी गए. मीडिया की सुर्खियों में बने रहने के लिए हर संभव प्रयास किया. गुजरात मॉडल पर सवाल खड़े किए और खुद को मोदी के सबसे बड़े नेता के रुप में पेश करने की कोशिश की. इस रणनीति के पीछे दो दलील थी. एक तो इससे मुस्लिम वोट आम आदमी पार्टी की तरफ आएगा और दूसरा यह कि चुनाव के बाद प्रधानमंत्री बनने में मदद मिलेगी. प्रधानमंत्री बनने के लिए केजरीवाल इतना आतुर हो गए कि वो उल्टे-पुल्टे बयान देने लग गए. उन्होंने तो यहां तक कह दिया कि देश में अस्थिर सरकार की जरूरत है. जनता ने केजरीवाल की चालबाजी को पहचान लिया. इसिलए जब नतीजा आया तो हर तरफ जमानत जब्त की झड़ी लग गई.

manish@chauthiduniya.com

वाममोर्चा की नैया डूब गई

लोकसभा चुनाव में वामदलों से अच्छे प्रदर्शन की उम्मीद राजनीतिक विश्लेषकों को नहीं थी, लेकिन महज दस सीटों पर वामपंथी पार्टियां सिमट जाएगी, ऐसी कल्पना संभवतः किसी ने नहीं की थी. पश्चिम बंगाल में पैंतीस वर्षों तक शासन करने वाली मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को इस बार सिर्फ दो सीटें ही मिली हैं, जबकि पिछली बार उसे सोलह सीटें हासिल हुई थी. हैरानी की बात यह है कि बंगाल में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, फॉरवर्ड ब्लॉक और रेवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी (आरएसपी)इस बार खाता भी नहीं खोल पाई. वामदलों की इस ऐतिहासिक हार के कारणों का जायजा ले रहे हैं चौथी दुनिया संवाददाता अभिषेक रंजन सिंह...

मुझे अच्छी तरह से याद है, जब पच्चीस वर्ष पहले एकीकृत बिहार की राजनीति में वामदलों का दख़ल हुआ करता था. मध्य बिहार, मिथिलांचल और गंगा-कोशी के इलाक़ों से वामदलों के कई सांसद और विधायक निर्वाचित होकर संसद और विधानसभा पहुंचते थे. छात्र, नौजवान, किसान और मज़दूरों की समस्याओं को लेकर वामपंथी पार्टियों ने कई ऐतिहासिक आंदोलन किए, लेकिन वर्ष 1990 के बाद बिहार में वामपंथ की बुनियाद कमज़ोर होने लगी. वामदलों की इस दुर्दशा के दो प्रमुख कारण थे. एक, वाम नेताओं का जनसंघर्षों से लगातार दूर होते जाना और दूसरी वजह बिहार में जातीय राजनीति का उभार ख़ासकर लालू और रामविलास जैसे नेता, जिन्होंने समाजवादी राजनीति करने के बजाय जातिगत राजनीति को ही अपना मुख्य आधार बना लिया. ठीक यही स्थिति उत्तर प्रदेश में देखी जा सकती है, जहां मुलायम सिंह यादव और मायावती ने डॉ. लोहिया और डॉ. आंबेडकर के सिद्धांतों के उलट जातीय राजनीति को हवा दी. निश्चित रूप से वामपंथ की जड़ें इन दोनों राज्यों में कमज़ोर होती चली गई.

पिछले दिनों लोकसभा चुनाव के परिणाम आए, आख़िर वही हुआ, जिसकी आशंका व्यक्त की जा रही थी. माकपा के गढ़ कहे जाने वाले पश्चिम बंगाल में यह पार्टी महज दो सीटें ही हासिल कर सकीं.वहीं दूसरी तरफ भाकपा, फॉरवर्ड ब्लॉक और आरएसपी

लोकसभा चुनाव परिणाम के बाद माकपा के समक्ष राष्ट्रीय दल का दर्ज़ा बरक़रार रखना मुश्किल हो गया है, माकपा की क़रारी हार का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि राष्ट्रीय पार्टी का दर्ज़ा बरकरार रखने के लिए उसे दो सांसदों की ज़रूरत है. ख़बरों के मुताबिक़ काडर बेस्ड कही जाने वाली माकपा अपने सिद्धांतों को तिलांजलि देकर अब उन दो निर्दलीय सांसदों की तलाश में जुटी है, जो पार्टी को इस संकट से उबार सके.

शून्य पर सिमट गई. बंगाल की रायगंज सीट से जीत हासिल करने वाले माकपा नेता मोहम्मद सलीम को छोड़ कोई बड़े नेता चुनाव जीतने में कामयाब नहीं हो सके. बांकुड़ा संसदीय सीट से लगातार नौ बार सांसद रह चुके वासुदेव आचार्य को भी तृणमूल कांग्रेस की नेता मुनमुन सेन के हाथों पराजित होना पड़ा. वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में वामदलों को पश्चिम बंगाल, केरल और त्रिपुरा में महज 10 सीटें ही मिली हैं. पश्चिम बंगाल, केरल और त्रिपुरा में जहां माकपा को नौ सीटें मिली हैं, वहीं भाकपा को केवल एक सीट से संतोष करना पड़ा है. चुनाव नतीजों के बाद माकपा के समक्ष राष्ट्रीय दल का दर्ज़ा बरक़रार रखना मुश्किल हो गया है. माकपा की करारी हार का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि राष्ट्रीय पार्टी का दर्ज़ा बरक़रार रखने के लिए उसे दो सांसदों की ज़रूरत है. लोकसभा चुनाव में अपनी इस शर्मनाक हार के लिए वामदलों के नेता ख़ुद ज़िम्मेदार हैं. पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव में तृणमूल कांग्रेस के हाथों शिकस्त खाने के बाद यह माना जा रहा था कि माकपा को अपनी ग़लतियों का एहसास होगा, लेकिन लोकसभा चुनाव के नतीजे यह बताने के लिए काफ़ी हैं कि वामदलों ने अपनी पुरानी ग़लतियों से कोई सीख नहीं ली है. दरअसल, ममता बनर्जी ने वामपंथ के सारे मुद्दे

लोकसभा में वामदलों की स्थिति

वर्ष 2004 (चौदहवीं लोकसभा)	वर्ष 2009 (पंद्रहवीं लोकसभा)	वर्ष 2014 (सोलहवीं लोकसभा)
माकपा-42	माकपा-16	माकपा-9
भाकपा-10	भाकपा-4	भाकपा-1
फॉरवर्ड ब्लॉक-3	फॉरवर्ड ब्लॉक-2	फॉरवर्ड ब्लॉक-0
आरएसपी-3	आरएसपी-2	आरएसपी-0

को हथियाने में कामयाब रही. वाममोर्चा को उन्हीं के हथियारों से पश्चिम बंगाल में ममता पीट रही है. सबसे अहम बात कि ममता ने मुस्लिम वोट बैंक पर कब्जा कर लिया है, जो कभी पूरी तरह से वामपंथियों के साथ था. वाममोर्चा की राजनीति नब्बे के दशक में लागू आर्थिक नीति, जल, जंगल और ज़मीन के मुद्दे पर टिकी हुई थी. आज ममता बनर्जी इन्हीं मुद्दों पर वाममोर्चा को मात दे रही हैं, क्योंकि वामदलों ने उन तमाम ज़मीनों संघर्षों से अपना नाता तोड़ लिया, जो कभी इस पार्टी का मूल सिद्धांत हुआ करती थी. नंदीग्राम, सिंगुर और जंगलमहल की घटनाओं ने तो माकपा की असलियत जनता के सामने पेश कर दी. माकपा के वरिष्ठ नेता हरकिशन सिंह सुरजीत ने एक जनसभा में कहा था कि वामपंथ की ताक़त छात्र-नौजवानों और किसान-मज़दूरों से है. जिससे यह तबका हमसे दूर हो जाएगा, उस दिन हम अप्रासंगिक हो जाएंगे. ■

वार्ता के नाम पर सिर्फ़ धोखा मिला है : *वरवर राव*

केंद्र में भाजपा की सरकार बनने से पहले कई तरह के कयास लगाए जा रहे हैं. उन्हीं कयासों में से एक है नक्सलवाद की समस्या और उसका समाधान. माना जा रहा है कि नरेंद्र मोदी की अगुवाई में बनने वाली नई सरकार नक्सलियों से वार्ता कर सकती है. क्या नक्सली संगठन ऐसे किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे? क्रांतिकारी तेलगु कवि और नक्सल समर्थक वरवर राव से इसी मसले पर चौथी दुनिया संवाददाता अभिषेक रंजन सिंह ने बातचीत की, प्रस्तुत हैं उसके मुख्य अंश...

माना जा रहा है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी नक्सलवाद की समस्या को लेकर कोई ठोस पहल करेंगे. संभव है नई सरकार नक्सली संगठनों से बातचीत भी करे?

मुझे तो दूर-दूर तक इसकी संभावना नज़र नहीं आती. वैसे भी केंद्र सरकार ने वार्ता के नाम पर नक्सलियों को हमेशा धोखा दिया है. जहां तक नई भाजपा सरकार की बात है, तो वह भला हमसे क्यों बातचीत करेगी. उनके लिए तो नक्सली और आतंकवादियों में कोई फ़र्क़ नहीं है. भाजपा के विचारों में तो नक्सलवाद का समाधान तो केवल सैन्य कार्रवाई से ही संभव है.

अगर केंद्र सरकार बातचीत का प्रस्ताव भेजती है, तो उस स्थिति में नक्सली संगठनों का निर्णय क्या होगा ?

इससे पहले भी केंद्र सरकार और नक्सली संगठनों के बीच वार्ता हुई है, लेकिन उससे कोई ठोस नतीजा नहीं निकला. उल्टा उनके साथ छल किया गया और कई नक्सलियों की धोखे से हत्या कर दी की गई.

अगर भविष्य में बातचीत की ज़मीन तैयार होती है, तो नक्सलियों की मुख्य मांगें क्या होंगी ?

ऑपरेशन ग्रीन हंट और कॉम्बिंग ऑपरेशन को तत्काल बंद करना, जेलों में बंद नक्सलियों की रिहाई और उन पर दर्ज़ मुक़दमे को वापस लेने और केंद्रीय सुरक्षा बल के जवानों को हटाने की पहल सरकार करे. नक्सलियों को आतंकवादी न कहकर उसे पॉलिटिकल एक्टविस्ट कहा जाए. प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय जनता यानी आदिवासियों का अधिकार होना चाहिए. विकास के नाम पर आदिवासियों को उनके जल, जंगल और ज़मीन से बेदख़ल नहीं किया जाए. ये हमारी मुख्य मांगें हैं. हम आज भी अपनी इस मांग पर क़ायम हैं. अगर केंद्र सरकार हमारी इन मांगों से सहमत होती है, तो बातचीत के विषय में विचार किया जा सकता है.

लोकसभा चुनाव में वामदलों को महज दस सीटें ही मिली हैं, अब तक इतिहास में यह सबसे कम संख्या है. क्या इसे वामपंथ का अवसान माना जाए?

चुनावी राजनीति और लोकतंत्र के विषय में मेरी राय काफी अलग है. लोकसभा चुनाव में वामदलों की शर्मनाक हार के ज़िम्मेदार इन पार्टियों के नेता हैं. बंगाल में नंदीग्राम और सिंगुर की घटनाओं के बाद सीपीएम की असलियत सामने आ गई. चुनाव में वामदलों को मिली हार के बाद यह कहना कि वामपंथ का अवसान हो गया है, तो यह कहना ग़लत है. जो लोग वामपंथी नेता सत्ता के लिए चुनावी राजनीति में आए हैं, उन्हें तो वाकई निराशाहुई होगी. ■

राज्य	नोटा
उड़ीसा	332780(1.5%)

राज्य	नोटा
पुडुचेरी	22268(3.0%)

राज्य	नोटा
पंजाब	58754(0.4%)

राज्य	नोटा
राजस्थान	327902(1.2%)

राज्य	नोटा
सिक्किम	4332(1.4%)

फोटो पत्रकार नेताओं से ज़्यादा परेशान रहे

प्रभात पांडे

16 वीं लोकसभा के लिए हुए आम चुनाव नेताओं के साथ-साथ पत्रकारों के लिए भी थकाने वाला रहा. लोकसभा चुनाव फोटो पत्रकारों के लिए अपने काम को अंज़ाम देना चुनौतियों से भरा रहा. वैसे इन चुनावों में बनारस आकर्षण का मुख्य केंद्र था, क्योंकि वहां से नरेंद्र मोदी और अरविंद केजरीवाल चुनाव मैदान में थे. ऐसे में बनारस से जुड़ी हर ख़बर अख़बारों और न्यूज चैनलों के लिए महत्वपूर्ण थी. ख़बरों की इस प्रतिस्पर्धा में फोटो पत्रकारों को सदैव सचेत रहना पड़ा. हालांकि ख़बरों के संकलन के लिए सभी पत्रकार सजग रहे, लेकिन फोटो पत्रकार किन परिस्थितियों में काम कर रहे थे, इस पर किसी की नज़र नहीं पड़ी.

बनारस में रैली की अनुमति नहीं मिलने के बाद मोदी ने एक अघोषित रोड-शो किया. बदलते चुनावी समीकरणों को कैमरे में क़ैद करने के लिए दिल्ली से तमाम फोटो पत्रकारों को बनारस कूच करने का आदेश उनके संस्थानों से मिला. अमूमन फोटो पत्रकारों को ऐसे समय अपने साथ ढ़ेर सारे उपकरण लेकर चलना पड़ता है. चुनावों के दौरान उनके ऊपर किसी एक इलाक़े की अधिकांश चुनावी गतिविधियों को कवर करने की बाध्यता होती है. पता नहीं, किस जगह क्या ख़बर हाथ लग जाए. देश के अधिकांश हिस्सों में बिजली की समस्या है. ऐसे में कैमरे और लैपटॉप की बैटरी को चार्ज रखना और ज़्यादा से ज़्यादा और सबसे बेहतर

बनारस में रैली की अनुमति नहीं मिलने के बाद मोदी ने एक अघोषित रोड शो किया. बदलते चुनावी समीकरणों को कैमरे में क़ैद करने के लिए दिल्ली से तमाम फोटो पत्रकारों को बनारस कूच करने का आदेश उनके संस्थानों से मिला. अमूमन फोटो पत्रकारों को ऐसे समय अपने साथ ढ़ेर सारे उपकरण लेकर चलना पड़ता है. चुनावों के दौरान उनके ऊपर किसी एक इलाक़े की अधिकांश चुनावी गतिविधियों को कवर करने की बाध्यता होती है.

तस्वीर निकालना अहम था. तस्वीरें खींचने में हुई एक पल की देर, सारा काम ख़राब कर सकती थीं. किसी भी परिस्थिति में सही समय पर सही तस्वीर निकालना बेहद चुनौती भरा काम था. साथ ही साथ अपार भीड़ में अपने उपकरणों को सुरक्षित रखना भी फोटो पत्रकारों के लिए कम चुनौती भरा काम नहीं था. यदि एक पत्रकार फील्ड में नहीं जा पाता है, तो वह टीवी पर उसका सीधा प्रसारण देखकर उसकी भरपाई कर सकता है, लेकिन फोटो पत्रकारों को ऐसी सहूलियत मिलना संभव नहीं है. अख़बारों में ख़बरों की प्रधानता होती हैं, लेकिन बिना संबंधित फोटो के वह ख़बर बेजान प्रतीत होती है. चुनावी सरगर्मियों के बीच किसी फोटो पत्रकार को अचानक असाइन्मेंट मिलने पर रेलगाड़ी और हवाई जहाज में आरक्षण मिलना मुश्किल होता है. ऐसे में बिना आरक्षण के नियत समय पर फील्ड में पहुंचना बेहद मुश्किल होता है. घंटो सफ़र के बाद कोई फोटो पत्रकार संबंधित जगहों पर पहुंचता है. अपनी नींद और थकान की परवाह किए बग़ैर वह काम पर निकलता है. यदि वह बिना किसी पूर्व योजना के ऐसी जगहों पर जाता है, तो उसके लिए होटल में एक अदद कमरा भी बुक कराना परेशानियों से भरा था. लोकसभा चुनाव के दौरान बनारस समेत कई महत्वपूर्ण संसदीय सीटों पर यह एक आम समस्या थी. इन शहरों में ज़्यादातर होटल राजनीतिक दलों के कार्यकर्ताओं से भरे थे. काफ़ी मशक्कत के बाद अगर कोई कमरा मिलता भी था, तो उसमें तीन-चार लोगों के साथ रहना वक्त की मांग थी. बावजूद इसके देश भर से आए फोटो पत्रकारों ने अपना दायित्व बखूबी निभाया, क्योंकि एक तस्वीर जो बात कहती है, वह हज़ार शब्द भी नहीं कह पाते हैं. ■

प्रमुख महिला प्रत्याशी जिन्होंने चुनाव में जीत हासिल किया है.

सुप्रिया सुले
राकपा(बारामती, महाराष्ट्र)

जब कांग्रेस के एकतंत्रीय शासन के ख़िलाफ़ हमारी लड़ाई चल रही थी, तो हमारे नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया कहते थे कि जिस कांग्रेस ने चीन के हाथ भारत को अपमानित कराया, उस कांग्रेस को हटाने और देश को बचाने के लिए हमें विपक्ष के सभी राजनीतिक दलों के साथ तालमेल बैठाना चाहिए. इस विषय पर डॉक्टर साहब से मेरी बहुत चर्चा होती थी. दो सालों तक बहस चली. आख़िर तक मैं यह कहता रहा कि आरएसएस और जनसंघ के साथ हमारा तालमेल नहीं बैठेगा.

आरएसएस क्या है?

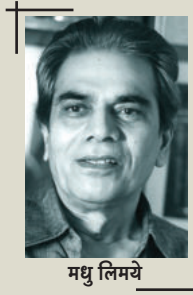

मधु लिमये

मैंने राजनीति में 1937 में प्रवेश किया. उस समय मेरी उम्र बहुत कम थी, चूंकि मैंने मैट्रिक की परीक्षा जल्दी पास कर ली थी, इसलिए कॉलेज में भी मैंने बहुत जल्दी प्रवेश किया. उस समय पूना (पुणे) में आरएसएस और सावरकर-वादी लोग एक तरफ़ और राष्ट्रवादी, विभिन्न समाजवादी एवं वामपंथी दल दूसरी तरफ़ थे. मुझे याद है कि एक मई, 1937 को हम लोगों ने मई दिवस का जुलूस निकाला था. उस जुलूस पर आरएसएस के स्वयंसेवकों और सावरकर-वादी लोगों ने हमला किया था और उसमें प्रसिद्ध क्रांतिकारी सेनापति बापट एवं हमारे नेता एस एम जोशी को भी चोटें आई थीं. तो, उसी समय से इन लोगों के साथ हमारा मतभेद था. संघ से हमारा पहला मतभेद था राष्ट्रीयता की धारणा पर. हम लोगों की यह मान्यता थी कि जो भारतीय राष्ट्र है, उसमें हिंदुस्तान में रहने वाले सभी लोगों को समान अधिकार है, लेकिन आरएसएस के लोगों और सावरकर ने हिंदू राष्ट्र की कल्पना सामने रखी. जिन्ना भी इसी किस्म की सोच के शिकार थे. उनका मानना था कि भारत में मुस्लिम राष्ट्र और हिंदू राष्ट्र यानी दो राष्ट्र हैं और सावरकर भी यही कहते थे.

दूसरा महत्वपूर्ण मतभेद यह था कि हम लोग लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना करना चाहते थे और आरएसएस के लोग लोकतंत्र को पश्चिम की विचारधारा मानते थे और कहते थे कि वह भारत के लिए उपयुक्त नहीं है. उन दिनों आरएसएस के लोग हिटलर की बहुत तारीफ़ करते थे. गुरु जी संघ के न केवल सरसंघचालक थे, बल्कि आध्यात्मिक गुरु भी थे. गुरु जी के विचारों और नाजी लोगों के विचारों में आश्चर्यजनक साम्य है. गुरु जी की एक किताब है, वी ऑर आवर नेशनहुड डिफाइंड, जिसका चतुर्थ संस्करण 1947 में प्रकाशित हुआ था. गुरु जी एक जगह कहते हैं, हिंदुस्तान के सभी ग़ैर-हिंदू लोगों को हिंदू संस्कृति और भाषा अपनानी होगी. हिंदू धर्म का आदर करना और हिंदू जाति और संस्कृति के गौरव-गान के अलावा कोई और विचार अपने मन में नहीं लाना होगा. एक वाक्य में कहें, तो वे विदेशी होकर रहना छोड़ें, नहीं तो उन्हें हिंदू राष्ट्र के अधीन होकर ही यहां रहने की अनुमति मिलेगी. विशेष सुलूक की तो बात ही अलग, उन्हें कोई लाभ नहीं मिलेगा, उनके कोई विशेषाधिकार नहीं होंगे. यहां तक कि नागरिक अधिकार भी नहीं. तो, गुरु जी करोड़ों हिंदुस्तानियों को ग़ैर-नागरिक के रूप में देखना चाहते थे, उनके नागरिकता के सारे अधिकार छीन लेना चाहते थे. और, यह कोई उनके नए विचार नहीं हैं.

जब हम लोग कॉलेज में पढ़ते थे, उस समय से आरएसएस वाले हिटलर के आदर्शों पर ले चलना चाहते थे. उनका मत था कि हिटलर ने यहूदियों की जो हालत की थी, वही हालत यहां मुसलमानों और ईसाइयों की करनी चाहिए. नाजी पार्टी के विचारों के प्रति गुरु जी की कितनी हमदर्दी है, यह उनकी वी नामक पुस्तिका के पृष्ठ 42 से, मैं जो उदाहरण दे रहा हूं, उससे स्पष्ट हो जाएगा, जर्मनी ने जाति और संस्कृति की विशुद्धता बनाए रखने के लिए सेमेटिक यहूदियों की जाति का सफाया करके पूरी दुनिया को अचंभित कर दिया था. इससे जातीय गौरव के चरम रूप की झांकी मिलती है. जर्मनी ने यह भी दिखला दिया कि जड़ से ही जिन जातियों और संस्कृतियों में अंतर होता है, उनका एक संयुक्त घर के रूप में विलय असंभव है. हिंदुस्तान में सीखने और बहस करने के लिए यह एक सबक है. आप यह कह सकते हैं कि वह एक पुरानी किताब है, जब भारत आज़ाद हो रहा था, उस समय की किताब है. लेकिन, उनकी दूसरी किताब है, ए बंच ऑफ थॉट्स. मैं उदाहरण दे रहा हूं, उसके लोकप्रिय संस्करण से, जो नवंबर, 1966 में प्रकाशित हुआ. इसमें गुरु जी ने आंतरिक ख़तरों की चर्चा की है और तीन आंतरिक ख़तरे बताए हैं. एक हैं मुसलमान, दूसरे हैं ईसाई और तीसरे हैं कम्युनिस्ट. सभी मुसलमान, सभी ईसाई और सभी कम्युनिस्ट भारत के लिए ख़तरा हैं. यह राय है गुरु जी की. इस तरह की उनकी विचारधारा है.

गुरु जी के साथ, मतलब आरएसएस के साथ हमारा दूसरा मतभेद यह है कि गोलवलकर जी और आरएसएस वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं और मेरे जैसे समाजवादी वर्ण-व्यवस्था के सबसे बड़े दुश्मन हैं. मैं अपने को ब्राह्मणवाद और वर्ण व्यवस्था का सबसे बड़ा शत्रु मानता हूं. मेरी यह निश्चित मान्यता है कि जब तक वर्ण-व्यवस्था और उसके ऊपर आधारित विषमताओं का नाश नहीं होगा, तब तक भारत में आर्थिक और सामाजिक समानता नहीं बन सकती है. लेकिन, गुरु जी कहते हैं कि हमारे समाज की दूसरी विशिष्टता थी वर्ण-व्यवस्था, जिसे आज जाति-प्रथा कहकर उपहास किया जाता है. आगे वह कहते हैं कि समाज की कल्पना सर्वशक्तिमान ईश्वर की चतुरंग अभिव्यक्ति के रूप में की गई थी, जिसकी पूजा सभी को अपने-अपने ढंग से और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार करनी चाहिए. ब्राह्मण को इसलिए महान माना जाता था, क्योंकि वह ज्ञान दान करता था. क्षत्रिय भी उतना ही महान माना जाता था, क्योंकि वह शत्रुओं का संहार करता था. वैश्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं था, क्योंकि वह कृषि एवं वाणिज्य द्वारा समाज की आवश्यकताएं पूरी करता था और शूद्र भी, जो अपने कला-कौशल से समाज की सेवा करता था. इसमें बड़ी चालाकी से शूद्रों के बारे में कहा गया है कि वे अपने हुनर और कारीगरी द्वारा समाज की सेवा करते हैं. लेकिन, इस किताब में चाणक्य के जिस अर्थशास्त्र की गुरु जी ने तारीफ़ की है, उसमें यह लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा करना शूद्रों का सहज धर्म है. इसकी जगह पर गुरु जी ने चालाकी से जोड़ दिया, समाज की सेवा.

हमारे मतभेद का चौथा बिंदु है भाषा. हम लोग लोकभाषा के पक्ष में हैं. सारी लोकभाषाएं भारतीय हैं, लेकिन गुरु जी की क्या राय है? गुरु जी ने बीच में सुविधा के लिए तो हिंदी को स्वीकारा, लेकिन उनका अंतिम लक्ष्य यह है कि राष्ट्र की भाषा संस्कृत हो. ए बंच ऑफ थॉट्स में उन्होंने कहा है, संपर्क भाषा की समस्या के समाधान के रूप में जब तक संस्कृत स्थापित नहीं हो जाती, तब तक सुविधा के लिए हमें हिंदी को प्राथमिकता देनी होगी. सुविधा के लिए हिंदी, लेकिन अंत में वह संपर्क-भाषा चाहते हैं संस्कृत. हमारे लिए यह शुरू से मतभेद का विषय रहा. महात्मा गांधी की तरह, लोकमान्य तिलक की तरह हम लोग लोकभाषाओं के समर्थक रहे. हम किसी पर भी हिंदी लादना नहीं चाहते, लेकिन हम चाहते हैं कि तमिलनाडु में तमिल चले, आंध्र में तेलुगू चले, महाराष्ट्र में मराठी चले, पश्चिम बंगाल में बंगला भाषा चले. अगर ग़ैर-हिंदीभाषी राज्य अंग्रेजी का इस्तेमाल करना चाहते हैं, तो वे करें. हमारा उनके साथ कोई मतभेद नहीं, लेकिन संस्कृत इने-गिने लोगों की भाषा है, एक विशिष्ट वर्ग की भाषा है. संस्कृत को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा देने का मतलब है, देश में मुट्ठी भर लोगों का वर्चस्व, जो हम नहीं चाहते.

पांचवीं बात, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में संघ-राज्य की कल्पना को स्वीकार किया गया था. संघ-राज्य में केंद्र के ज़िम्मे निश्चित विषय होंगे, उनके अलावा जो विषय होंगे, वे राज्यों के अंतर्गत होंगे. लेकिन, देश के विभाजन के बाद राष्ट्रीय नेता चाहते थे कि केंद्र को मजबूत बनाया जाए, इसलिए संविधान में एक समवर्ती सूची बनाई गई. इस समवर्ती सूची में बहुत सारे अधिकार केंद्र और राज्य, दोनों को दिए गए और जो विशिष्ट अधिकार हैं, वे पहले तो राज्य को मिलने वाले थे, लेकिन केंद्र को मजबूत करने के लिए केंद्र को दे दिए गए. बहरहाल, संघ-राज्य बन गया, लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके आध्यात्मिक गुरु गोलवलकर ने हमेशा भारतीय संविधान के इस आधारभूत तत्व का विरोध किया.

ये लोग ए यूनियन ऑफ स्टेट्स संघ-राज्य की जो कल्पना है, उसकी खिल्ली उड़ाते हैं और कहते हैं कि हिंदुस्तान में यह जो संघ-राज्य वाला संविधान है, उसे ख़त्म कर देना चाहिए. गुरु जी ए बंच ऑफ थाट्स में कहते हैं, संविधान का पुनरीक्षण होना चाहिए और इसका पुन: लेखन कर शासन की एकात्मक प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए. गुरु जी एकात्मक प्रणाली यानी केंद्रनुगामी शासन चाहते हैं. वह कहते हैं कि ये जो राज्य वगैरह हैं, सब ख़त्म होने चाहिए. इनकी कल्पना है कि एक देश, एक राज्य, एक विधायिका और एक कार्यपालिका. यानी राज्यों के विधानमंडल, राज्यों के मंत्रिमंडल सब समाप्त. यानी ये लोग डंडे के बल पर अपनी राजनीति चलाएंगे. अगर डंडा इनके हाथ में आ गया-राजदंड, तो केंद्रनुगामी शासन स्थापित करके छोड़ेंगे. इसके अलावा स्वतंत्रता आंदोलन का राष्ट्रीय झंडा था तिरंगा. तिरंगे झंडे की इज्जत के लिए, शान के लिए सैकड़ों लोगों ने बलिदान दिया, हज़ारों लोगों ने लाठियां खाईं, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कभी भी तिरंगे झंडे को राष्ट्रीय ध्वज नहीं मानता. वह तो भगवा ध्वज को ही मानता था और कहता था, भगवा ध्वज हिंदू राष्ट्र का प्राचीन झंडा है. हमारा वही आदर्श है, हमारा वही प्रतीक है. जिस तरह संघ-राज्य की कल्पना को गुरु जी अस्वीकार करते थे, उसी तरह लोकतंत्र में भी उनका विश्वास नहीं था. लोकतंत्र की कल्पना पश्चिम से आयात की हुई कल्पना है और पश्चिम का संसदीय लोकतंत्र भारतीय विचार और संस्कृति के अनुकूल नहीं है, ऐसी उनकी धारणा है.

जहां तक समाजवाद का सवाल है, उसे तो वह सर्वथा पराई चीज मानते थे और कहते थे कि यह जितने इज्म हैं यानी डेमोक्रेसी हो या समाजवाद, ये सब विदेशी हैं और इनका त्याग करके हमें भारतीय संस्कृति के आधार पर समाज रचना करनी चाहिए. जहां तक हमारे जैसे लोगों का सवाल है, हम लोग तो संसदीय लोकतंत्र में विश्वास रखते हैं, समाजवाद में विश्वास रखते हैं और यह भी चाहते हैं कि शांतिपूर्ण ढंग से और महात्मा जी के सृजनात्मक सिद्धांत को अपना कर हम लोकतंत्र की प्रतिस्थापना करें, सामाजिक संगठन करें और समाजवाद लाएं. जब कांग्रेस के एकतंत्रीय शासन के ख़िलाफ़ हमारी लड़ाई चल रही थी, तो हमारे नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया कहते थे कि जिस कांग्रेस ने चीन के हाथ भारत को अपमानित कराया, उस कांग्रेस को हटाने और देश को बचाने के लिए हमें विपक्ष के सभी राजनीतिक दलों के साथ तालमेल बैठाना चाहिए. इस विषय पर डॉक्टर साहब से मेरी बहुत चर्चा होती थी. दो सालों तक बहस चली. आख़िर तक मैं यह कहता रहा कि आरएसएस और जनसंघ के साथ हमारा तालमेल नहीं बैठेगा. अंत में डॉक्टर साहब ने कहा, मेरे नेतृत्व को तुम मानते हो या नहीं? मैंने कहा, हां, मैं मानता हूं. वह बोले, क्या यह ज़रूरी है कि सभी प्रश्नों पर तुम्हारी और मेरी राय मिले या सभी प्रश्नों पर मैं तुम्हें सहमत करूं? एक-आध प्रश्न ऐसा भी रहे, जो हम दोनों के बीच मतभेद का विषय हो और मैं तो इस तरह का तालमेल चाहता हूं एक बड़े दुश्मन को हराने के लिए. तो, इस मामले में तुम मान जाओ, इसे ट्रायल दे दो. हो सकता है, मेरी बात सही निकले. यह भी हो सकता है, तुम्हारी बात सही निकले. लेकिन, मेरी यह मान्यता रही है कि अंत में आरएसएस और डॉ. राम मनोहर लोहिया की विचारधारा में संघर्ष होकर रहेगा.

जब इंदिरा गांधी ने हम पर इमरजेंसी लादी या वह तानाशाही की ओर बढ़ने लगीं, संजय को आगे बढ़ाने लगीं, मारुति कांड हुआ, तो यह बात सही है कि इमरजेंसी के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए लोगों ने इनके साथ तालमेल बैठाया. लोकनायक जय प्रकाश जी कहते थे कि एक पार्टी बनाए बिना हम लोग इंदिरा और तानाशाही को नहीं हटा सकते. चौधरी चरण सिंह की भी यही राय थी कि एक पार्टी बने. हम लोग जब जेल में थे, तब यह पूछा गया था कि एक पार्टी बनाने और चुनाव लड़ने के बारे में आपकी क्या राय है? मुझे याद है कि मैंने यह संदेश जेल में भेजा था कि मेरी राय में चुनाव लड़ना चाहिए. चुनाव में करोड़ों लोग हिस्सा लेंगे. चुनाव एक गतिशील चीज है. चुनाव अभियान जब जोर पकड़ेगा, तो इमरजेंसी के जितने बंधन हैं, वे सब टूट जाएंगे और लोग अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का इस्तेमाल करेंगे. इसीलिए मेरी राय थी कि चुनाव लड़ना चाहिए. अब चूंकि लोकनायक जय प्रकाश नारायण और सभी लोगों की यह राय थी कि एक पार्टी बनाए बिना हम लोगों को सफलता नहीं मिलेगी, तो हम लोगों ने भी इसके लिए मान्यता दे दी थी.

लेकिन, मैं कहना चाहता हूं कि यह जो समझौता हुआ था, वह दलों के बीच में हुआ था, जैसे कि जनसंघ, सोशलिस्ट पार्टी, संगठन कांग्रेस, भालोद और कुछ विद्रोही कांग्रेसी. आरएसएस के साथ न हमारा कोई करार हुआ, न आरएसएस की कोई शर्त मानी गई, बल्कि जेलों में हमारे बीच मनु भाई पटेल का एक परिपत्र प्रसारित किया गया था, उससे तो हमें यह पता चला कि चौधरी चरण सिंह ने 7 जुलाई, 1976 को आरएसएस की सदस्यता और जो नई पार्टी बनेगी उसकी सदस्यता में मेल होगा या टकराव, इसकी चर्चा उठाई थी. जनसंघ के उस समय के कार्यकारी महासचिव ओमप्रकाश त्यागी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि नई पार्टी जो शर्त लगाना चाहे, लगा सकती है. फिलहाल आरएसएस पर तो पाबंदी है, आरएसएस को भंग किया जा चुका है, इसलिए आरएसएस का तो सवाल ही नहीं उठता. ■

अगले अंक में जारी...

(प्रख्यात समाजवादी नेता मधु लिमये ने यह आलेख जनता पार्टी के विघटन के तुरंत बाद लिखा था. उनके लिखे कई आलेख आज भी प्रासंगिक हैं.)

आरएसएस के साथ हमारा दूसरा मतभेद यह है कि गोलवलकर जी और आरएसएस वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं और मेरे जैसे समाजवादी वर्ण-व्यवस्था के सबसे बड़े दुश्मन हैं. मैं अपने को ब्राह्मणवाद और वर्ण व्यवस्था का सबसे बड़ा शत्रु मानता हूं. मेरी यह निश्चित मान्यता है कि जब तक वर्ण-व्यवस्था और उसके ऊपर आधारित विषमताओं का नाश नहीं होगा, तब तक भारत में आर्थिक और सामाजिक समानता नहीं बन सकती है. लेकिन, गुरु जी कहते हैं कि हमारे समाज की दूसरी विशिष्टता थी वर्ण-व्यवस्था, जिसे आज जाति-प्रथा कहकर उपहास किया जाता है. आगे वह कहते हैं कि समाज की कल्पना सर्वशक्तिमान ईश्वर की चतुरंग अभिव्यक्ति के रूप में की गई थी, जिसकी पूजा सभी को अपने-अपने ढंग से और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार करनी चाहिए.

राज्य	नोटा
तमिलनाडु	582062(1.4%)

राज्य	नोटा
त्रिपुरा	23783(1.2%)

राज्य	नोटा
उत्तर प्रदेश	592211(0.7%)

राज्य	नोटा
उत्तराखंड	48043(1.1%)

राज्य	नोटा
पश्चिम बंगाल	568276(1.1%)

संपादकीय

संतोष भारतीय

जब तोप मुक़ाबिल हो

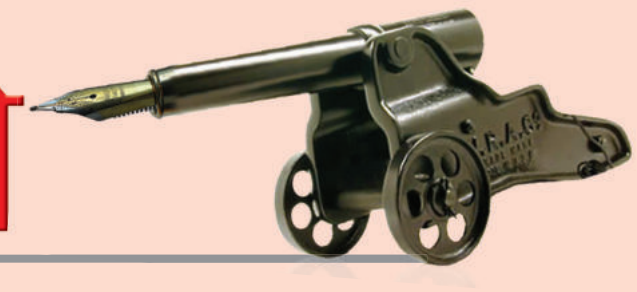

यह चुनाव कई भ्रांतियों को तोड़ गया

य ह चुनाव अद्भुत रहा. लोगों ने यह समझ रखा था कि जनता उनकी गुलाम है और वो कुछ करें या न करें, लोग उनको वोट देंगे ही देंगे. एक धारणा यह थी कि मुसलमान हमेशा भारतीय जनता पार्टी को जो हरा सकता है, उसे वोट देंगे और इसी बात को फैलाने का काम हमेशा मुसलमानों के नेता करते रहे. मुसलमानों के नेता इस धारणा का फायदा भी उठाते रहे. और हर चुनाव से पहले टैक्टिकल वोटिंग की बात कहकर विभिन्न पार्टियों को वोट दिलाने का ज़िम्मा भी लेते रहे. टैक्टिकल वोटिंग दरअसल ऐसा शब्द है जिस शब्द के ऊपर न कोई ज़िम्मेदारी आती है और न किसी को उसका फायदा होता है. एक लिस्ट निकाली जाती है और साथ में एक अपील कि हमने ये लाखों-करोड़ों में छपवा कर मुसलमानों के पास संदेश भेज दिया है कि अब वो उसे वोट दे देंगे, जो बीजेपी को हरा सकता है. एक ही चुनाव क्षेत्र में कई पार्टियों के टैक्टिकल वोटों की लिस्ट आती है. यह लिस्ट भी आजतक एक नहीं हुई. यह चुनाव इन सब भ्रांतियों को भी तोड़ गया.

क्या मुसलमानों ने इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को वोट दिया? अब जब हम अपने जानने वाले मुस्लिम दोस्तों के बच्चों से बात करते हैं, तो पता चलता है कि उन्होंने भी भारतीय जनता पार्टी को वोट दिया. उसे वोट नहीं दिया जो भारतीय जनता पार्टी को हरा सकता है. इसका मतलब है कि सारे देश भर में 18 से 26 वर्ष तक का तबका मोटे तौर पर नरेंद्र मोदी में संभावनाएं तलाश रहा था. वह राहुल गांधी की न उम्र से प्रभावित था, न भाषा से प्रभावित था, न उनके ज्ञान से प्रभावित था. वह क्षेत्रीय नेताओं के प्रभाव से भी अछूता रहा, जिन्हें हम मायावती, मुलायम सिंह, नीतीश कुमार या लालू प्रसाद यादव के रूप में जानते हैं. दरअसल इस तरह के नेता, जो किसी भी क़ीमत पर भारतीय जनता पार्टी को अपना दुश्मन मानते रहे हैं, उत्तर प्रदेश और बिहार में ज्यादा हैं. मुस्लिम समाज के भी 18 से 26 साल के ये नौजवान देश के बाक़ी नौजवानों से अलग नहीं रहे और शायद उन्होंने बड़ी संख्या में भारतीय जनता पार्टी को वोट डाला. वरना ऐसा कैसे हो सकता था कि जहां 46, 48, 52, 56 फ़ीसदी मुसलमानों की आबादी हो और वहां पर भारतीय जनता पार्टी का कैंडीडेट डेढ़ से दो लाख मतों से चुनाव जीते. इसका मतलब है बड़ी संख्या में मुस्लिम नौजवानों ने या मुस्लिम महिलाओं ने वोट दिया.

वो लोग जो जातीय आधार पर गठबंधन करने का जादू चलाते रहे, जिनमें मायावती, मुलायम सिंह, लालू यादव और नीतीश कुमार जैसे नेता प्रमुख हैं, ऐसे लोगों को इनकी जाति ने भी धोखा दे दिया. मायावती जी अब कहती हैं कि बीजेपी और समाजवादी पार्टी ने हथकंडे आजमाए, जिसकी वजह से बीएसपी को एक भी सीट नहीं मिली. वहीं मुलायम सिंह धार्मिक भावनाओं को फैलाने का आरोप लगाते हैं, पर ये सारी चीजें तब समझ में आती हैं जब चुनाव से पहले ये बात कहते. चुनाव से पहले ये सभी प्रधानमंत्री पद की कुर्सी पर नजर गड़ाए थे और खुलेआम बोलते भी थे कि हम ही प्रधानमंत्री बनेंगे और हमारे बिना सरकार नहीं बनेगी. इसका यह भी मतलब निकलता है कि इन्हीं की जाति के एक बड़े तबके ने इन्हें हवा ही नहीं लगने दी कि वो दूसरी तरफ खिसक रहे हैं.

वामपंथी पार्टियों का और बुरा हाल रहा. वो तो खिसक कर के इतिहास की सबसे निचली सीढ़ी पर खड़ी हो गई. और बंगाल में तो सीपीएम ने यह बता दिया कि उसने पिछली हार से कुछ नहीं सीखा. लोगों से संपर्क नहीं किया. इतना ही नहीं, अपने को बढ़ाने की बात दूर, अपने को जानबूझ कर जितना सिकोड़ सकते थे उतना सिकोड़ लिया. सबसे बड़ा दुर्भाग्य इस लोकसभा में वामपंथियों की संख्या के रुप में दिखाई देगा.

देश में अब तक यह धारणा थी कि देश गठबंधन के दौर में पहुंच गया है, पर इस चुनाव में भाजपा को मिले बहुमत ने इसे भी बदल दिया है और किसी भी पार्टी को एकल बहुमत मिल सकता है, यह साबित कर दिया है.

कांग्रेस देश के लोगों को मानसिक गुलाम मानती रही है, इसीलिए उसने पिछले 20 सालों में कोई ऐसी रणनीति नहीं बनाई जिससे कि इसका पार्टी संगठन खड़ा हो. ऐसा लगता है कि कांग्रेस नेतृत्व को पार्टी संगठन हमेशा सबसे निकृष्ट काम लगता रहा. कांग्रेस संगठन ने प्रदेशों में कहीं पर भी नेता नहीं बनाए. कांग्रेस संगठन ने देश भर में कहीं पर कोई नेतृत्व समूह नहीं बनाया जो लोगों के बीच जा कर के उनकी बात पहुंचा सके. कुछ प्रवक्ता जिन्हें हम बुद्धिहीन प्रवक्ता कह सकते हैं दिल्ली में, वो कांग्रेस की सारी रीति-नीति लोगों को बताते रहे हैं और इनमें ऐसे लोगों की प्राथमिकता रही, जिन्हें कांग्रेस के सिद्धांत का ए बी सी डी भी नहीं आता. जो अपने मन से गढ़े तर्कों के आधार पर लोगों को रुष्ट करते रहे उन्हें पता भी नहीं चला कि लोग रुष्ट हो रहे हैं. जब कभी-कभी अख़बारों में या टीवी चैनलों में इस तरह की बहस होती थी तो वे यही समझाते थे कि परम बुद्धिमान वो हैं, बाक़ी सब महामूर्ख हैं और वे समझ ही नहीं पा रहे हैं कि देश की जनता का मूड क्या है? यहां तक कि चुनाव घोषित होने के 24 घंटे पहले एक टेलीविजन चैनल पर कांग्रेस के प्रवक्ता या प्रवक्ताओं के नाम पर हुल्लड़बाजों की फौज राजनीतिक शिष्टता को भूलकर बहस कर रही थी.

कांग्रेस पार्टी में राजनीतिक समझदारी के शून्य ने और जनता को अपना गुलाम मानने की सनक ने उन्हें यह दिन दिखाया. हमने कई बार राय दी कि राहुल गांधी को अपने नाना की कुछ किताबें पढ़नी चाहिए. जिसमें पिता के पत्र पुत्री के नाम, भारत का इतिहास शामिल है. नेहरु जी ने जेल मे अद्भुत किताबें लिखीं, पर उन किताबों की भूमिका से भी राहुल गांधी का संबंध नहीं रहा. राहुल गांधी ज्यादातर विदेश में रहे, उन्हें देश की समस्याओं का भी उतना नहीं पता, क्योंकि उनके आस-पास रहने वाले लोग भी उतने ही ज्यादा समस्याओं से कटे रहे. एक शख्श मोहन प्रकाश थे, जिन्हें हम राहुल की टीम में मान सकते हैं, लेकिन शायद मोहन प्रकाश भी अपनी पोजीशन को लेकर ज्यादा सतर्क रहते थे बजाए इसके कि वह राहुल गांधी को देश की समस्याओं से अवगत कराते. अब जबकि चुनाव समाप्त हो चुके हैं, तब इस बात की आवश्यकता है कि कांग्रेस नए सिरे से अपने को देखे. नए सिरे से इस बात की रणनीति बनाए कि वो कैसे लोकसभा में भारतीय जनता पार्टी का सामना करेगी. उसका कौन नेता नरेंद्र मोदी का जवाब देगा. क्योंकि हक़ीकत यह है कि कांग्रेस को अब लोकसभा में विपक्ष का दर्ज़ा भी अगर मिलेगा तो लोकसभा अध्यक्ष की दयनीय कृपा पर मिलेगा. वो जो दया करके कृपा करेंगे तो नेता विपक्ष की जगह पर कांग्रेस का कोई व्यक्ति बैठ सकता है वरना यह जगह भी कांग्रेस के हाथ से चली गई. अब कांग्रेस की इस दयनीय अवस्था के ऊपर कांग्रेस को ही सोचना पड़ेगा. संसद में आने वाले बिल, देश में आने वाली समस्याएं, देश के सामने चुनौतियां और वो सारे सवाल जो कांग्रेस देश के सामने छोड़ गई है, उन्हें हल करने के लिए उसे नरेंद्र मोदी पर दबाव डालना पड़ेगा. अगर कांग्रेस यह सोचे कि नरेंद्र मोदी ये जवाब देंगे कि ये समस्याएं तो आपकी पैदा की हुई हैं, तो कांग्रेस लोकसभा में नरेंद्र मोदी का सामना नहीं कर पाएगी. लोकसभा ऐसी जगह है जहां भारतीय जनता पार्टी ने पिछले 10 सालों में कांग्रेस को खुला छोड़ दिया था और जिसका नतीजा यह हुआ कि ये सारी समस्याएं देश को कांग्रेस की वजह से मिलीं. अब अगर कांग्रेस दिमागी तौर पर बुद्धिमानी का परिचय देते हुए लोकसभा में नरेंद्र मोदी का सामना नहीं करेगी तो नरेंद्र मोदी को लोकसभा में भी वॉकओवर दे देगी. कांग्रेस को यह समझना चाहिए कि इस संसद में ऐसे ऐसे लोग हुए हैं, जो थे अकेले लेकिन जिनकी बात को सारा देश सुनता था. और वो ही सच्चा लोकतंत्र है. कांग्रेस को लोकतंत्र के प्रति अपनी निष्ठा दोबारा दोहरानी ड़ेगी और सदन में यह साबित करना पड़ेगा कि वो न केवल खुद लोकतांत्रिक है बल्कि सरकार को भी लोकतांत्रिक रास्ते पर चलाने की सामर्थ्य रखती है.

जिन सवालों को हमने छेड़ा उनके ऊपर मुसलमानों को भी आपस में बात करने की ज़रूरत है. कांग्रेस में भी मंथन की ज़रूरत है और साथ-ही-साथ वो सारे नेता जो अपने को जनता का पहरुआ बताते हैं उन्हें भी अपने संपूर्ण क्रियाकलापों पर सोचने की ज़रूरत है, वरना वो जिस अखाड़े में अब लड़ने जा रहे हैं वो उनका अखाड़ा नहीं नरेंद्र मोदी का अखाड़ा है. और नरेंद्र मोदी की इस बात के लिए तारीफ़ करनी चाहिए कि उन्होंने दूसरों के अखाड़े में जा कर उन्हें चित्त कर दिया. और अब ये पहलवान उनके अखाड़े में आएंगे तो वो किस तरह लड़ेंगे ये देखना दिलचस्प होगा.

आखिर नरेंद्र मोदी को देश का शासन संभालने और अपना काम प्रारंभ करने के लिए क्या दो महीने से ज्यादा का समय चाहिए. नहीं, उन्हें दो महीनों के अंदर समस्याओं के हल के लिए कोशिश प्रारंभ करनी ही होगी. जनता की समस्याओं से उपजी निराशा ने नरेंद्र मोदी को ऐतिहासिक अवसर दिया है. अगर जनता के प्रति नरेम्द्र मोदी संवेदनशील है तो उन्हें जनता का चेहरा देख नीतियों की घोषणा करनी चाहिए, जिसके लिए दो महीने काफी है. ■

editor@chauthiduniya.com

www.kamalmorarka.com

कमल मोरारका

अब एक नए भारत की बात होनी चाहिए

चुनावी टीकाकारों द्वारा यह कहना कि यह चुनाव पोलराइज्ड था, ठीक है. लेकिन सच यह भी है कि श्री नरेन्द्र मोदी ने बहुत चालाकी से काम लेते हुए हिंदू एकता की बात, मंदिर की बात से परहेज किया. खुद को विकास, बुनियादी सुविधाओं, रोजगार जैसे मुद्दों से खुद को जोड़े रखा. ये वही सारे मुद्दें हैं जिसके सहारे कांग्रेस आज़ादी के बाद से सरकार में रही. 77 में जनसंघ ने खुद को जनता पार्टी में मिला दिया था. जयप्रकाश नारायण ने जनसंघ के लोगों को मुख्यधारा में आने में मदद की थी. इससे पहले वे महात्मा गांधी की हत्या के आरोपों कटे हुए थे. 80 के दशक में, उन्होंने एक ग़लती की और जनता पार्टी से बाहर आ गए और फिर भारतीय जनता पार्टी का गठन किया.

चुनाव परिणाम बाहर आ चुके है. तकरीबन पूरा देश एक तरफ चला गया है. ख़ासकर, उत्तर भारत, ठीक 1971 और 1977 की तरह. 1984 के बाद, पहली बार किसी पार्टी ने अकेले बहुमत की सरकार बनाई. लेकिन 1984 में, इंदिरा गांधी की हत्या के बाद उपजी सहानुभूति की लहर थी, जिसकी वजह से कांग्रेस जीती. दूसरी ओर, 1971 में इंदिरा गांधी के ग़रीबी हटाओ नारे की वजह से कांग्रेस को प्रचंड बहुमत मिला था और फिर 1977 में आपातकाल के ख़िलाफ़ गुस्सा वोट बन कर बाहर निकला था. 2014 के चुनाव में लोगों का गुस्सा घोटाले के ख़िलाफ़ वोट बन कर निकला है. वो घोटाले जो कैग रिपोर्टों से बाहर आए. वे घोटाले जो हज़ारों करोड़ रुपए के नहीं, बल्कि लाखों हज़ारों करोड़ों के थे. जीवन के कई दैनिक समस्याओं के तहत, बेरोजगारी के तहत, मुद्रास्फीति आदि समस्याओं से घिरी जनता के लिए यह सब सहना कठिन था. यह जनता देख रही थी कि उसके शासक न सिर्फ भ्रष्टाचार में लिप्त हैं बल्कि सरकारी खजाने को लूट रहे है. यही गुस्सा वोट के रूप में निकला और विपक्षी भारतीय जनता पार्टी ने अपना कार्ड बेहतरीन ढंग से खेलते हुए ये वोट हासिल कर लिए. लोगों ने देखा कि कैसे 2014 के घोषणा पत्र में धारा 370 या राम मंदिर जैसे मुद्दें कहीं कोने में रख दिए गए थे. बीजेपी का मुख्य एजेंडा कांग्रेस पार्टी की तरह ही था. मुख्य रूप से विकास, बेरोजगारी, समाज के ग़रीब तबके की देखभाल आदि की बातें. असल में जब बीजेपी ने जब अपना घोषणा पत्र जारी किया तब कांग्रेस पार्टी ने इसे अपने घोषणापत्र की कॉपी कहा था. और यह सही बात थी.

लेकिन कांग्रेस पार्टी को यह पता ही नहीं चला कि कैसे उसी के घोषणापत्र की कॉपी करके भाजपा ने खुद का चेहरा एक समावेशी पार्टी का बना लिया बजाय एक विभाजनकारी या एक ध्रुवीकरण करने वाली ताकत के. चुनावी टीकाकारों द्वारा यह कहना कि यह चुनाव पोलराइज्ड था, ठीक है. लेकिन सच यह भी है कि श्री नरेन्द्र मोदी ने बहुत चालाकी से काम लेते हुए हिंदू एकता की बात, मंदिर की बात से परहेज किया. खुद को विकास, बुनियादी सुविधाओं, रोजगार जैसे मुद्दों से खुद को जोड़े रखा. ये वही सारे मुद्दें है जिसके सहारे कांग्रेस आज़ादी के बाद से सरकार में रही. 77 में जनसंघ ने खुद को जनता पार्टी में मिला दिया था. जयप्रकाश नारायण ने जनसंघ के लोगों को मुख्यधारा में आने में मदद की थी. इससे पहले वे महात्मा गांधी की हत्या के आरोपों कटे हुए थे. 80 के दशक में, उन्होंने एक ग़लती की और जनता पार्टी से बाहर आ गए और फिर भारतीय जनता पार्टी का गठन किया. इसमें भी एक ग़लती उन्होंने यह की कि इस पार्टी के साथ केसरिया रंग, हिंदू संकीर्णता का रंग, एक विरोधी समावेशी संस्थान का रंग दे दिया. 1998 में उन्होंने 5-6 सालों के लिए सत्ता में आने का मौक़ा मिला. लेकिन वो अटल बिहारी वाजपेयी का व्यक्तित्व का कमाल था और फिर वो गठबंधन का दौर था. अब 2014 में वे कैसे अकेले सत्ता में आ गए? दरअसल, आज जो सत्ता में आया है वो एक नया कांग्रेस ही है.

आज की भाजपा कांग्रेस पार्टी की एक मिश्रित संस्करण है. भविष्य में क्या होगा पता नहीं है. मुझे नहीं मालूम कि श्री नरेन्द्र मोदी वास्तव में मतदाताओं द्वारा दिए गए जनादेश को संभाल पाएंगे या नहीं. मतदाताओं ने जिस तरह से उन्हें जनादेश दिया है, मसलन यूपी में 80 में से 71 सीटें, मायावती की पार्टी को कुछ भी नहीं मिला. इसका अर्थ है कि दलितों ने भाजपा को वोट दिया है. अगर भाजपा वास्तव में अपने दीर्घकालिक दृष्टि में इन बातों का ख्याल नहीं रखती है तो वो नई कांग्रेस में परिवर्तित हो जाएगी. कांग्रेस वास्तव में एक बहुत बुरी स्थिति में स्वयं को डाल चुकी है. अपने खुद के विचारों को छोड़ने का यही नतीजा होता है. कांग्रेस को आज एक नेता की ज़रूरत है. हालांकि, अभी भी कांग्रेस के लिए सब कुछ लुटा नहीं है. कांग्रेस एक बड़ी पार्टी हैं. वर्तमान में देश के सभी भागों में उसकी उपस्थिति है. लेकिन उसे नए प्रयास और विशेष रूप से भाजपा के ख़िलाफ़ काफी मेहनत करने की जरूरत है. कांग्रेस जो सर्वश्रेष्ठ इच्छा अभी कर सकती है वो यह कि भाजपा फिर से मंदिर आदि जैसे मुद्दों पर ध्यान देना शुरु कर दे. ये ऐसे मुद्दे है जो अब जनता का ध्यान नहीं खींचती. अगर ऐसा होता है तो कांग्रेस के लिए एक अवसर होगा. लेकिन अगर नरेन्द्र मोदी सचमुच आधुनिक व खुले दिमाग के है तो फिर ऐसा नहीं होगा और यह बीजेपी के लिए अच्छी बात होगी.

कांग्रेस वास्तव में एक बहुत बुरी स्थिति में स्वयं को डाल चुकी है. अपने खुद के विचारों को छोड़ने का यही नतीजा होता है. कांग्रेस को आज एक नेता की ज़रूरत है. हालांकि, अभी भी कांग्रेस के लिए सब कुछ लुटा नहीं है. कांग्रेस एक बड़ी पार्टी हैं. वर्तमान में देश के सभी भागों में उसकी उपस्थिति है. लेकिन उसे नए प्रयास और विशेष रूप से भाजपा के ख़िलाफ़ काफी मेहनत करने की जरूरत है. कांग्रेस जो सर्वश्रेष्ठ इच्छा अभी कर सकती है वो यह कि भाजपा फिर से मंदिर आदि जैसे मुद्दों पर ध्यान देना शुरु कर दे. ये ऐसे मुद्दे है जो अब जनता का ध्यान नहीं खींचती. अगर ऐसा होता है तो कांग्रेस के लिए एक अवसर होगा.

हमारे जैसे लोगों के लिए सांत्वना की बात यह है कि चाहे कोई भी पार्टी हो लेकिन भारतीय राजनीति के समावेशी प्रकृति को बनाए रखा जाना चाहिए. एक स्वतंत्र पर्यवेक्षक के रूप में हमारी आपत्ति संघ परिवार के विभाजनकारी धार्मिक दर्शन को ले कर है. बाबरी मस्जिद तोड़ने से ले कर मुसलमानों के नरसंहार जैसी बातों को ले कर आपत्ति है. हालांकि, यह सब अब 20 वर्ष पीछे की बात हो चुकी है. भारत अब युवाओं का देश है जहां अब यह सब नहीं चलेगा. 84 सिख दंगे, 92 बाबरी मस्जिद या 2002 के गुजरात दंगों को लोग कैसे भूलेंगे, मैं नहीं जानता. लेकिन 2014 में एक नए भारत की बात अब होनी चाहिए. ज़रूरत इस बात की है कि अब हिन्दू मुस्लिम की बात मत करो. अब आप अपनी शर्तों पर चीन और पाकिस्तान के साथ अच्छे संबंध होने और अमेरिका के साथ समान स्तर पर आ कर काम करने जैसी बातें करते है तो यह सब ठीक है. इसमें कोई समस्या नहीं है. हमारी नौकरशाही जगह पर आ जाए, विदेश नीति ठीक हो जाए, नया नेतृत्व नौकरशाही को प्रेरित करें क्योंकि कांग्रेस के दस साल के शासन में नौकरशाही निष्क्रिय हो चुकी थी. अगले दो वर्ष नई सरकार के प्रदर्शन के लिए काफी अहम होंगे और तब तक हम एक नए भविष्य की कल्पना ही कर सकते है.

feedback@chauthiduniya.com

मुसलमानों का वोट और जीतने वाले उम्मीदवार

मुसलमानों के अंदर मोदी को रोकने के भ्रम को पैदा करने के लिए अगर किसी को सबसे ज्यादा जिम्मेदार माना जाएगा, तो वह खुद मुसलमानों के तथाकथित धार्मिक रहनुमा या फिर मुसलमानों के बीच काम करने वाले मुस्लिम संगठन हैं, जिन्होंने अपनी तरफ़ से अपील जारी करके अलग-अलग लोकसभा क्षेत्रों में भाजपा के उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को वोट डालने को कहा. नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों का वोट पूरे देश में बुरी तरह से बिखर गया. दूसरी तरफ भाजपा को मुस्लिम वोटों की ज्यादा चिंता करने की जरूरत इसलिए नहीं पड़ी, क्योंकि बुनियादी तौर पर मुस्लिम वोटों को बांटने की जो रणनीति भाजपा की रही है जाने अनजाने में सारे मुस्लिम संगठन इसी रणनीति पर काम कर रहे थे.

क़मर तबरेज़

2014 के आम चुनाव में जीत हासिल करके 16वीं लोकसभा में पहुंचने वाले सभी उम्मीदवारों के नाम का ऐलान हो चुका है. पिछली बार जहां जीतने वाले उम्मीदवारों की संख्या 30 थी, इस बार वह घटकर 23 पर पहुंच चुकी है. लोकसभा की कुल 543 सीटों की लड़ाई में 52 सीटें ऐसी थीं, जहां पर मुस्लिम उम्मीदवार दूसरे, 46 तीसरे और 53 पर चौथे नंबर पर रहे. इसलिए अगर कुल मिलाकर देखा जाए, तो 175 सीटों पर मुस्लिम उम्मीदवारों का प्रदर्शन बहुत बेहतर था. लेकिन, यह भी एक सच्चाई है कि इस बार का चुनाव मुसलमानों ने पूरी तरह से मोदी के खिलाफ लड़ा, जिसकी वजह से उनका वोट हर जगह बिखर गया.

लोकसभा में मुसलमानों के घटते प्रतिनिधित्व के लिए जहां एक तरफ कांग्रेस पार्टी जिम्मेदार है, वहीं इस बार आम आदमी पार्टी को कसूरवार ठहराया जाए तो ग़लत नहीं होगा. पहले कांग्रेस पार्टी ने मुसलमानों को वोट बैंक के तौर पर इस्तेमाल या उन्हें बेवकूफ बनाने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ा. उसी तरह इस बार के आम चुनाव में मुसलमानों को यह ग़लतफहमी पैदा हो गई कि राष्ट्रीय स्तर पर सिर्फ आम आदमी पार्टी ही है, जो उन्हें भाजपा या मोदी से निजात दिला सकती है.

मुसलमानों के अंदर इस भ्रम को पैदा करने के लिए अगर किसी को सबसे ज्यादा जिम्मेदार माना जाएगा, तो वह खुद मुसलमानों के तथाकथित धार्मिक रहनुमा या फिर मुसलमानों के बीच काम करने वाले मुस्लिम संगठन हैं, जिन्होंने अपनी तरफ़ से अपील जारी करके अलग-अलग लोकसभा क्षेत्रों में भाजपा के उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को वोट डालने को कहा. नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों का वोट पूरे देश में बुरी तरह से बिखर गया. दूसरी तरफ भाजपा को मुस्लिम वोटों की ज़्यादा चिंता करने की ज़रूरत इसलिए नहीं पड़ी, क्योंकि बुनियादी तौर पर मुस्लिम वोटों को बांटने की जो रणनीति भाजपा की रही है और जाने-अनजाने में सारे मुस्लिम संगठन इसी रणनीति पर काम कर रहे थे. इसलिए भाजपा उन तमाम क्षेत्रों में जहां मुस्लिम वोट निर्णायक थी, मुस्लिम संगठनों की बेवकूफी पर और अपने उम्मीदवारों की सुनिश्चित जीत पर मन ही मन मुस्कुराती रही और जब नतीजों का ऐलान हुआ तो भाजपा ने जैसा सोचा था, वैसा ही हुआ और इसका फायदा भाजपा को बड़ी भारी बहुमत के रूप में मिला. मुसलमानों को कम-से-कम यह बात समझ लेनी चाहिए कि लोकतंत्र में मजहबी गुटबंदी का कोई मतलब नहीं होता है. यही इस चुनाव की अच्छी बात रही है कि धर्मनिरपेक्षता की जो परिभाषा कांग्रेस पेश करती रही और उसने जिस तरह उर्दू भाषा को सिर्फ और सिर्फ मुसलमानों से जोड़ दिया था, उसी तरह धर्मनिरपेक्षता को मुसलमानों से ज़बरदस्ती जोड़ने की कोशिश की, जो पूरी तरह से नाकाम हो गई. आइए ये देखते हैं कि देश के अलग-अलग राज्यों में मुसलमानों के वोटों का बंटवारा किस तरह से हुआ.

मुस्लिम वोटों का विभाजन ज्यादातर उत्तरप्रदेश और बिहार में हुआ. पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी मुसलमानों को अपने साथ जोड़े रखने में कामयाब रहीं. यही काम असम में बदरुद्दीन अजमल ने भी किया, जिसका फ़ायदा इन दोनों राज्यों में क्रमशः तृणमूल कांग्रेस और ऑल इंडिया डेमोक्रेटिक फ्रंट को हुआ. बिहार की बात करें, तो वहां पर मुसलमानों ने आरजेडी और कांग्रेस गठबंधन को अपना वोट दिया. लेकिन इसके बावजूद मुस्लिम वोट बिहार में बिखराव से नहीं बच सके. मिसाल के तौर पर मधुबनी सीट पर राष्ट्रीय जनता दल और जद-यू दोनों ही पार्टियों ने मुस्लिम उम्मीदवारों को उतारा, जिसकी वजह से मुस्लिम वोट बुरी तरह से बंट गए और भाजपा के उम्मीदवार हुकुमदेव नारायण यादव को जीत मिल गई. लक्षद्वीप की एकमात्र लोकसभा सीट पर कुल छह उम्मीदवार खड़े थे, जिनमें पांच मुसलमान थे. आश्चर्य की बात यह है कि मुसलमानों का वोट बांटने के लिए भाजपा ने जहां पहली बार यहां से मुस्लिम उम्मीदवार खड़ा किया था. वहीं, सीपीआई और सीपीएम ने मुसलमान उम्मीदवार उतारे थे. जबकि समाजवादी पार्टी ने गैर-मुस्लिम उम्मीदवार को टिकट दिया था. बुनियादी तौर पर मुक़ाबला कांग्रेस और एनसीपी के बीच था, जिसमें एनसीपी के उम्मीदवार मो फैजल विजयी हुए.

इसी तरह तमिलनाडु के वेल्लोर सीट पर नज़र डालें, तो यहां अन्नाद्रमुक के उम्मीदवार ने भाजपा के उम्मीदवार को हराया, जबकि तीसरे स्थान पर इंडियन मुस्लिम लीग उम्मीदवार अब्दुर रहमान थे. इस सीट पर कुल तीन मुस्लिम उम्मीदवार थे, जिनके प्राप्त वोटों को जोड़ दिया जाए, तो विजयी उम्मीदवार से ज्यादा हो जाता है.

उत्तरप्रदेश की बात करें, तो यहां मुसलमान वोटों का सबसे अधिक बिखराव हुआ, जिसका नतीजा यह हुआ कि इस राज्य से एक भी मुस्लिम उम्मीदवार जीत दर्ज करने में सफल नहीं हो पाया. पिछली लोकसभा में कुल पांच उम्मीदवार इस राज्य से लोकसभा पहुंचे थे. त्रासदी यह कि कांग्रेस के कहावर मुस्लिम नेता और केंद्रीय मंत्री सलमान खुर्शीद फरुख़ाबाद से अपनी सीट बचाने में नाकाम ही नहीं रहे, बल्कि चौथे नंबर पर पहुंच गए. अलीगढ़ में भी मुस्लिम वोट एसपी, बसपा, कांग्रेस और आप के बीच बंट गए. इसका नतीजा यह हुआ कि भाजपा के उम्मीदवार बड़ी आसानी से जीत गए. अमरोहा सीट का भी हाल यही रहा, जहां सपा और बसपा के बीच वोटों के बंटने की वजह से भाजपा के उम्मीदवार की जीत हो गई. डुमरियागंज की सीट पर बसपा के उम्मीदवार मो मुकीम, पीस पार्टी के डॉ अयूब, आप के बदरेआलम और सपा के माता प्रसाद पांडेय के बीच बंट गए, जिसका फ़ायदा कांग्रेस छोड़कर भाजपा की टिकट से लड़ रहे जगदंबिका पाल को हुआ. वे लगभग एक लाख वोटों से जीतने में सफल हुए.

मेरठ, पश्चिमी उत्तरप्रदेश का वह इलाक़ा है, जो सांप्रदायिक तनाव की वजह से हमेशा सुर्खियों में रहता है. यहां सांप्रदायिक हिंसा का एक इतिहास रहा है. पिछले दिनों मेरठ के पास ही जिले मुज़फ्फरनगर और शामली में सांप्रदायिक दंगे हुए थे, जिसमें मुसलमानों का काफी नुकसान हुआ था. इन इलाक़ों में दंगों का फायदा चुनावों में पूरी तरह से भाजपा को मिला. इस इलाक़े के मुसलमान वोटर इतने डरे हुए थे कि उन्होंने हर क्षेत्र में भाजपा के उम्मीदवार को हराने के लिए वोट डाला. लेकिन उनका वोट बसपा, सपा और कांग्रेस में बंट गया, जिसकी वजह से भाजपा की जीत तय हो गई. उत्तरप्रदेश में रामपुर लोकसभा क्षेत्र देश के उन गिनेचुने सीटों में से है, जहां मुस्लिम मतदाताओं की संख्या अधिक है. इसके बावजूद भाजपा के उम्मीदवार डॉ नेपाल सिंह जीतने में कामयाब रहे. उन्होंने सपा के उम्मीदवार नसीर अहमद खान को 23,435 वोटों से हराया. इस क्षेत्र से दूसरे, तीसरे और चौथे स्थान पर रहने वाले मुस्लिम उम्मीदवारों के वोटों को जोड़ा जाए, तो कुल 6 लाख से अधिक हो जाता है. इसी तरह सहारनपुर, संबल में भी मुस्लिम नोटों में विभाजन की वजह से भाजपा के उम्मीदवार को जीत मिली. इससे यह पता चलता है कि मुसलमानों को भाजपा और मोदी के ख़िलाफ़ खड़ा करके कांग्रेस पार्टी ने अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी. साथ ही साथ सबसे बड़ा नुकसान पहुंचाया. दूसरे तरफ कांग्रेस समेत सपा के मुलायम सिंह यादव, राजद के लालू प्रसाद यादव, बसपा की मायावती, आप के अरविंद केजरीवाल का सेकुलरिज्म के नाम पर मुसलमानों को बरगलाना मुसलमानों के लिए सबसे ज्यादा नुकसानदेह साबित हुआ. मुसलमान ख़ुद को सेकुलर कहने वाली पार्टियों के जाल से जितनी जल्दी बाहर निकल आए, उनके लिए उतना ही अच्छा होगा, नहीं तो सेकुलरिज्म के नाम पर जिस तरह उन्हें 60 से अधिक वर्षों से बेवकूफ बनाया जाता रहा है. यह सिलसिला उसी तरह चलता रहेगा. इन सबके बीच यह सवाल बहस का मुद्दा बना हुआ है कि क्या मुसलमानों ने इस बार भारतीय जनता पार्टी को भी वोट दिया है.

राष्ट्रीय स्तर पर अगर मुसलमानों के वोटिंग ढांचे की बात की जाए, तो शिया मुसलमानों का एक बड़ा तबका काफी पहले से भाजपा को अपना वोट देता रहा है. लेकिन, क्या इस बार सुन्नी मुसलमानों ने भी भाजपा को वोट दिया है. इस सवाल के जवाब में अगर हम उन लोकसभा क्षेत्रों का जायजा लें, जहां से भाजपा ने अपने मुस्लिम उम्मीदवार उतारे हैं, तो जवाब हां में जाता है. मिसाल के तौर पर इस बार लक्षद्वीप में भाजपा ने पहली बार अपना मुस्लिम उम्मीदवार उतारा. कुल डाले गए वोटों 46,239 वोटों में से भाजपा के उम्मीदवार को सिर्फ़ 187 वोट मिले. उसी तरह भाजपा ने कश्मीर के श्रीनगर से फैय्याज़ अहमद बट्ट को टिकट दिया था, जिन्हें कुल 3, 12, 212 वोटों में से 4, 464 वोट मिले. इस सीट पर वे चौथे नंबर पर थे. ऐसे में जाहिर है कि श्रीनगर सीट पर भाजपा को मुसलमान वोट ज़रूर मिले होंगे. भाजपा ने 98.2 फीसदी आबादी वाले अनंतनाग सीट पर अपना मुस्लिम उम्मीदवार उतारा था, जिन्हें 4,720 वोट मिले. वो भी यहां चौथे स्थान पर थे. बारामुला सीट पर भाजपा उम्मीदवार गुलाम मोहम्मद मीर को कुल चार लाख 65 हज़ार 992 में से 6,558 वोट मिले. वे भी चौथे पायदान पर थे. बंगाल के घटाल लोकसभा सीट से भाजपा ने मोहम्मद आलम को अपना उम्मीदवार बनाया था, जिन्हें वहां कुल 13,66,709 वोटों में से 94,842 वोट मिले. वहां पर वे चौथे स्थान पर ते. उसी तरह बिहार के भागलपुर सीट से वर्तमान सांसद शाहनवाज हुसैन को उतारा था, लेकिन वो इस बार अपनी सीट बचाने में नाकाम रहे. राजद के उम्मीदवार शैलेश कुमार से सिर्फ 9,485 वोटों के मामूली अंतर से हार गए और दूसरे नंबर पर रहे. जाहिर है शाहनवाज हुसैन को मुसलमान वोट मिलते रहे हैं. इस बार उन्हें मुसलमानों को वोट बड़ी तादाद में मिले. इस बार भाजपा ने किसी भी मुस्लिम प्रत्याशी को टिकट नहीं दिया था और न ही किसी अन्य राज्य में मुस्लिम उम्मीदवार उतारे थे.■

निर्वाचित हुए मुस्लिम उम्मीदवार

क्रमांक	नाम	पार्टी	निर्वाचन क्षेत्र	राज्य	अंतर
1	असादुद्दीन ओवैसी	ए आई एम आई एम	हैदराबाद	आंध्र प्रदेश	202454
2	सिराज उद्दीन अजमल	ए आई यू डी एफ	बारपेटा	असम	42341
3	बदरुद्दीन अजमल	ए आई यू डी एफ	ढुबरी	असम	229730
4	तसलीम उद्दीन	आरजेडी	अररिया	बिहार	146504
5	तारिक अनवर	एनसीपी	कटिहार	बिहार	1,14,740
6	महबूब अली कैसर	एलजेपी	खगड़िया	बिहार	76003
7	मोहम्मद असरारउल हक	कांग्रेस	किशनगंज	बिहार	76003
8	महबूबा मुफ्ती	पीडीपी	अनंतनाग	जम्मू और कश्मीर	65417
9	मुज्जपर हुसैन बेग	पीडीपी	बारामूला	जम्मू और कश्मीर	29219
10	तारिक हमीद कारा	पीडीपी	श्रीनगर	जम्मू और कश्मीर	42280
11	ई अहमद	आईयूएमएल	मल्लपुरम	केरल	194739
12	ई टी मोहम्मद बशीर	आईयूएमएल	पोन्नानी	केरल	25410
13	एम आई शानवास	कांग्रेस	व्यानंद	केरल	20870
14	मोहम्मद फैजल पी पी	एनसीपी	लक्ष्यद्वीप	लक्ष्यद्वीप	1535
15	अनवर राझा ए	ऐआईडीएमके	रामनाथपुरम	तमिलनाडू	119324
16	इदरिस अली	टीएमसी	बसीरहाट	पश्चिम बंगाल	109959
17	ममताज संघमित्रा	टीएमसी	बर्दवान-दुर्गापुर	पश्चिम बंगाल	107331
18	अबु हाशिम ख़ान चौधरी	कांग्रेस	मालदा दक्षिण	पश्चिम बंगाल	164111
19	मौसम नूर	कांग्रेस	मालदा उत्तर	पश्चिम बंगाल	65%05
20	बदरुद्दौजा खां	सीपीआईएम	मुर्शीदाबाद	पश्चिम बंगाल	18453
21	मोहम्मद सलीम	सीपीआईएम	रायगंज	पश्चिम बंगाल	1634
22	सुलतान अहमद	टीएमसी	उलूबेरिआ	पश्चिम बंगाल	201141
23	अपरुपा पोद्दार(अफरीन अली)	टीएमसी	आरामबाग	पश्चिम बंगाल	346845

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

इस बार सुन्नी मुसलमानों ने भी भाजपा को वोट दिया है. इस सवाल के जवाब में अगर हम उन लोकसभा क्षेत्रों का जायजा लें, जहां से भाजपा ने अपने मुस्लिम उम्मीदवार उतारे हैं, तो जवाब हां में जाता है. मिसाल के तौर पर इस बार लक्षद्वीप में भाजपा ने पहली बार अपना मुस्लिम उम्मीदवार उतारा. कुल डाले गए वोटों 46, 239 वोटों में से भाजपा के उम्मीदवार को सिर्फ 187 वोट मिले. उसी तरह भाजपा ने कश्मीर के श्रीनगर से फैय्याज़ अहमद बट्ट को टिकट दिया था, जिन्हें कुल 3, 12, 212 वोटों में से 4, 464 वोट मिले. इस सीट पर वे चौथे नंबर पर थे. ऐसे में जाहिर है कि श्रीनगर सीट पर भाजपा को मुसलमान वोट जरूर मिले होंगे.

प्रमुख महिला प्रत्याशी जिन्होंने चुनाव में जीत हासिल की है.

मीनाक्षी लेखी
भाजपा(नईदिल्ली, दिल्ली)

feedback@chauthiduniya.com

मुस्लिम मतदाता पर उलेमा एवं संगठनों की अपीलें बेअसर

कहने को तो भारत जैसे बड़ी जनसंख्या वाले राष्ट्र में मुसलमान 13.4 प्रतिशत है. मगर तमाम स्थानों पर कहीं अधिक तो कहीं कम संख्या में होने के कारण इनका चुनाव के समय महत्व बहुत बढ़ जाता है. यही कारण है कि पंचायत से लेकर संसदीय चुनाव में सभी पार्टियां एवं ग्रुप्स इन्हें महत्व देते हैं. 16वीं लोकसभा चुनाव के दौरान भी देश की 543 सीटों में अधिकतर पर ये विवाद का विषय बने रहे. अपनी जीत को सुनिश्चित करने के लिए सभी पार्टियां यहां तक कि भाजपा भी और उनके उम्मीदवार उनसे समर्थन की अपील करते रहे. ये अपीलें आमतौर से मुसलमानों के संगठनों एवं अहम नेताओं से की जाती रहीं. अतएव यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इस बार मुस्लिम संगठनों एवं नेताओं की अपीलों का असर मुसलिम मतदाताओं पर क्या पड़ा? आइये इसका विश्लेषण करते हैं.

वसीम अहमद

चुनावी नतीजों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि 1991 में शुरू हुआ मुसलमानों में टैक्टिकल वोटिंग का सिलसिला अभी तक चल रहा है. इसके अंतर्गत भाजपा उम्मीदवार को हराने के लिए धर्मनिरपेक्ष कहलाने वाली पार्टियों में सबसे अधिक ताकतवर एवं जीतने वाले उम्मीदवार को मत देने को कहा जाता है जो कि पूरे संसार में शायद अपने प्रकार का अकेला रुझान है. इस लिहाज से मुस्लिम संगठनों एवं नेताओं की यह अपील तो प्रभावी रही और मुस्लिम मतदाताओं में अधिकतर ने किसी भी भाजपा उम्मीदवार को वोट देने से गुरेज किया और इसी के साथ-साथ मुस्लिम मत प्रतिशत अन्य धार्मिक समूहों की तुलना में अधिक रहा. मगर उनकी ये रहनुमाई उन्हें बहुत अधिक फायदा नहीं पहुंचा सकी और मुस्लिम मतदाता विभिन्न सीटों पर भ्रम का शिकार हुआ और उसका वोट विभाजित हुआ जिसके कारण अनेक सीटों पर भाजपा के उम्मीदवार कामयाब हो गए. इसका साफ मतलब ये हुआ कि चले थे भाजपा को रोकने मगर जिस राह पर चले उससे भाजपा और अधिक आगे बढ़ी. गत 23 वर्षों में सात बार से संसदीय चुनाव में यही होता आया है.

आज भारतीय मुसलमान विभिन्न विचारों एवं जात-पात में विभाजित होकर रह गए हैं. उनकी अधिक संख्या भाजपा के विरोध मे एकमत हो भी जाती है तो सेक्यूलर कहलाने वाली पार्टियों में किसे मत दिए जाएं, इसपर एक राय नहीं हो पाती है और विभिन्न गैरभाजपा पार्टियों में इनका मत बंट जाता है जिसका सीधा फायदा भाजपा को पहुंच जाता है. अलग-अलग विचारों एवं बिरादरी के अलग-अलग नेतृत्व मुसलमानों में पाए जाते हैं. उनके माननेवाले अपने-अपने नेतृत्व की अपील की पाबंदी करते हैं. उदाहरण के तौर पर बरेलवी विचारधारा के मानने वाले इससे संबंधित संगठनों एवं नेतृत्व के अपील को मानते हैं तो शिया विचाराधारा से जुड़े समूह एवं संगठन अपने नेताओं की अपील पर ध्यान देते हैं. यहां मुसलमानों के जात पात के फैक्टर को भी हरगिज नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है. हालांकि ये बात उलेमा एवं मुस्लिम नेताओं की ओर से बार-बार कही जाती है कि इस्लाम के अनुयायियों में जात-पात की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, इसके बावजूद इस कटु सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि निजी जीवन से लेकर राजनीतिक जीवन तक विभिन्न मामलों में वह इससे प्रभावित होते हैं. इस लिहाज से देखा जाए तो इस बार मुस्लिम उलेमा, संगठनों एवं अन्य नेतृत्व की अपीलों की कोई प्रभावी भूमिका हरगिज नहीं दिखाई दी. चुनावी नतीजों को देखने के बाद अंदाजा हुआ कि मुस्लिम समाज ने अपनी सूझबूझ एवं परिस्थिति को सामने रखते हुए वोटिंग की. उदाहरण के तौर पर बिहार में मुसलामनों की बड़ी संख्या ने कांग्रेस-राजद के लिए वोट दिया और उत्तर प्रदेश के मुसलमानों का वोट बसपा, सपा एवं कांग्रेस में बिखर गया. यही सबकुछ वाराणसी, इलाहाबाद एवं अमेठी में हुआ. इसके फलस्वरूप वहां आम आदमी पार्टी एवं कांग्रेस दोनों को वोट मिले. इसी प्रकार दिल्ली में मुसलमानों का वोट आम आदमी पार्टी एवं कांग्रेस में विभाजित हुआ. पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की जनसंख्या 27 प्रतिशत है. वहां उनके वोट तृणमूल कांग्रेस, लेफ्ट फ्रंट, एयूडीएफ एवं वेल्फेयर पार्टी ऑफ इंडिया में बंट गए. अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर उलेमा एवं मुस्लिम संगठनों का प्रभाव आम मुस्लिम जनता पर कम क्यों पड़ा? मुस्लिम संगठनों एवं उलेमा को आम मुसलमानों ने नजरअंदाज क्यों किया?

अगर हम इस पहलू पर नजर डालें तो अंदाजा होता है कि इसकी बुनियादी वजह यह थी कि इस बार किसी भी मुस्लिम संगठन या उलेमा की तरफ से खुल कर कोई राय नहीं दी गई. मुस्लिम संगठनों ने जो अपीलें की थी उसमें ये बात खुली हुई नहीं थी कि सेक्यूलर कहलाने वाली किस पार्टी को वोट दिया जाए. बस यह अपील की गई कि फासीवाद के रूझान वाली पार्टी को हराने के लिए किसी भी सेक्यूलर पार्टी को अपना वोट दें. प्रश्न यह भी उठता है कि किसी क्षेत्र से दो या उससे अधिक सेक्यूलर पार्टियों के उम्मीदवार खड़े हों तो उस समय मुस्लिम मतदाता क्या करें? किस को अपना वोट दें? इसपर मुस्लिम संगठनों एवं नेतृत्व ने कोई खुलासा नहीं किया. अतएव मुस्लिम समुदाय के विभिन्न तबकों को स्वयं निर्णय लेना पड़ा कि वह क्या करें और किसको वोट दें? कुछ उलेमा एवं संगठनों की ओर से विशिष्ट पार्टी के लिए अपीलें आईं मगर ये तमाम अपीलें अलग-अलग प्लेटफॉर्म से अलग-अलग पार्टियों के लिए थीं. उदाहरण के तौर पर जमीयतुल उलेमा हिंद (अरशद) की वकालत सपा एवं कांग्रेस दोनों के लिए थी जबकि जमीयत के दूसरे धड़े (महमूद) की इन दोनों ही पार्टियों से दूरी बनी हुई थी. इसी प्रकार बरेलवी विचाधारा के मौलाना तौकीर रजा खान जिनकी निकटता समाजवादी पार्टी के साथ थी मगर वह बाद में आम आदमी पार्टी, बसपा एवं सपा के बीच झूलते रहे जबकि मौलाना यूसुफ कछोछवी, कारी मुहमद मियां मजहरी एवं मौलाना सोहैब कासमी जैसे लोगों ने भाजपा के लिए अपीलें की. इसी प्रकार मुसलमानों के सबसे पुराने संगठन मरकजी जमीयत अहले हदीस हिंद के महासचिव मौलाना असगर अली इमाम मेहदी सल्फी मदनी ने बिहार में नीतीश कुमार के लिए एवं जामा मस्जिद के शाही इमाम सैयद अहमद बुखारी ने कांग्रेस के लिए समर्थन की बात की और फतेहपुरी मस्जिद के शाही इमाम मुफ्ती मुकर्रम ने गैर बीजेपीकी बात कह कर मतदाताओं को दिग्भ्रमित किया और किसी एक पार्टी के हक में बात नहीं कही. ऑल इंडिया मुस्लिम मजलिश मुशावरत ने विभिन्न राज्यों के मुस्लिम मतदाताओं से भाजपा के विरुद्ध वोट देने की अपील करते हुए कहा कि दिल्ली की 7 सीटों पर वह सेक्यूलर पार्टियों अर्थात कांग्रेस एवं आम आदमी पार्टी के समर्थन में वह निर्णय लें जबकि इसी मुशावरत में सम्मिलित जमायते इस्लामी ने दिल्ली एवं बनारस में मात्र आम आदमी पार्टी को पसंद किया. गौरतलब है कि इसी संगठन ने रायबरेली में सोनिया गांधी एवं अमेठी में राहुल गांधी के समर्थन में अपील की. इस संबंध में आश्चर्यजनक बात तो यह हुई कि मुशावरत अध्यक्ष डॉ. जफरुल इस्लाम खां जो कि वेल्फेयर पार्टी ऑफ इंडिया के उपाध्यक्ष भी हैं ने मुशावरत की तरफ से अपील करते हुए अपने मुख्य कार्यालय में आयोजित संवाददाता सम्मेलन में कह दिया कि वह केरल में सभी सीटों पर इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग को जिताएं अर्थात मल्लापुरम में मुस्लिम लीग अध्यक्ष ई. अहमद को सफल बनाएं एवं वेल्फेयर पार्टी के उम्मीदवार प्रोफेसर इस्माइल को हराएं. इस प्रकार ये बात सिद्ध हो जाती है कि मुस्लिम संगठनों में से कुछ का रवैया न केवल खुला हुआ नहीं था बल्कि एक दूसरे से टकराने वाला भी था.

जमायते इस्लामी हिंद ने अपना 15 सूत्रीय घोषणा पत्र जारी किया था. मगर इस घोषणा पत्र को किसी भी पार्टी की ओर से स्वीकार करने की बात सामने नहीं आई. जहां तक ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल की बात है यह सदैव टैक्टिकल वोटिंग की वकालत करती रही है. इसी प्रकार प्रसिद्ध मुस्लिम विचारक डॉ. जावेद जमील एवं इंडिया इस्लामिक कल्चरल सेंटर के अध्यक्ष एवं कुरैशी बिरादरी के प्रसिद्ध नेता सिराजुद्दीन कुरैशी ने मुस्लिम संदर्भ में 11 सूत्रीय एजेंडा जारी किया एवं जकात फाउंडेशन ऑफ इंडिया के डॉ. सैयद जफर महमूद ने 20 सूत्रीय मांगों को विभिन्न सियासी पार्टियों को भेजा मगर किसी भी राजनीतिक पार्टी की ओर से इन बिंदुओं पर कोई बातचीत नहीं हुई. मस्जिदों के इमामों के संगठन के अध्यक्ष उमैर इलियासी एवं नदवतुल उलेमा के साथ साथ यूनाइटेड मुस्लिम फ्रंट के सुप्रीमो मौलाना सलमान हसनी नदवी की राय भी साफ नहीं थी. उनकी ये राय अप्रभावी रही. एक ओर मुस्लिम संगठनों की उलझी हुई राय एवं दूसरी ओर उलेमा के अलग अलग प्लेटफॉर्म अलग अलग पार्टियों के लिए की गई अपीलों में मुसलमानों को बेजार कर दिया. और फिर उन्होंने अपने क्षेत्र के उसी उम्मीदवार को वोट दिया जिससे उनकी आशाएं जुड़ी हुई थीं चाहे वह उम्मीदवार किसी भी पार्टी से संबंध रखता हो. यही कारण है कि कुछ मुस्लिम वोट भाजपा को भी गया. शिया एवं सून्नी के नाम पर लखनऊ एवं अन्य शहरों में मुसलमानों का वोट बिखर कर भाजपा को मिला. गौरतलब है कि 2009 में भी भाजपा को 3.7 प्रतिशत मुस्लिम मत मिला था और इससे पूर्व भी कमोबेश मुस्लिम मत उन्हें मिलता रहा था और इस बार के चुनाव में सीएनएन, आईबीएन एवं सीएसडीएस के सर्वे के अनुसार 9 प्रतिशत मुसलमानों ने बीजेपी को वोट दिया है.

अगर इस लिहाज से देखें तो कहा जा सकता है कि मुस्लिम समाज ने इस बार उलेमा एवं मुस्लिम संगठनों की अपीलों पर कोई ध्यान ही नहीं दिया और यही कारण है कि वोट प्रतिशत में बढ़ोतरी होने के बावजूद इनका वोट क्षेत्रीय स्तर पर विवादित हो गया और इसका फल यह निकला अतीत की तरह इस बार भी मुस्लिम उम्मीदवार अपनी जनसंख्या के अनुपात में संसद में नहीं पहुंच पाए. देश में मुस्लिम आवादी के अनुपात में संसद में 73 मुस्लिम सदस्य होने चाहिए परंतु ये उम्मीद 1952 से लेकर अब तक पूरी नहीं हो पाई और इसमें निरंतर गिरावट ही हो रही है.

इस संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय इंकबाल अंसारी ने अपनी पुस्तक भारतीय मुसलमानों की राजनीतिक नुमाइंदगी में 1952 से लेकर 2004 तक हुए चुनावों का विश्लेषण किया है. उनके अनुसार 1952 में निर्वाचित लोकसभा सदस्यों ने मात्र 21 मुस्लिम थे जबकि अपनी जनसंख्या के अनुसार उस समय उनकी यह संख्या 49 होनी चाहिए थी, जिसका साफ मतलब यह हुआ कि प्रथम लोकसभा में मुसलमानों की साझीदारी उनकी जनसंख्या के अनुपात की बुनियाद पर आधे से भी कम थी. 1957 में हुए आम चुनाव में मुसलमानों की संख्या 24, 1962 में 23, 1967 में 29, 1972 में 30, 1977 में 34 एवं 1980 में बढ़ कर 49 हो गई. 1980 में हुए लोकसभा के मध्यवर्ती चुनाव में सबसे अधिक संख्या 49 रही जोकि अपने आप में एक रिकॉर्ड है. इसके बाद हुए लोकसभा चुनावों में मुस्लिम नुमाइंदगी में निरंतर कमी हुई है. 1984 में जहां यह संख्या 46 थी, वहीं 1989 में यह संख्या घट कर 33 एवं 1991 में मात्र 28 रह गई है. 1996 में हुए आम चुनाव में 543 सदस्यों वाली लोकसभा में मुसलमानों की संख्या 28 थी जबकि उस समय उनकी जनसंख्या के अनुपात के अनुसार ये संख्या 66 होनी चाहिए थी. 1998 में भी प्राय: यही संख्या बरकरार रही. परंतु 1999 में हुए मध्यवर्ती चुनाव में थोड़ी सी वृद्धि हुई एवं मुस्लिम सदस्यों की संख्या लोकसभा में 32 हुई. 2004 में हुए चुनावों में 36 मुस्लिम सदस्य निर्वाचित हुए जबकि 2009 में संख्या कम होकर 29 हो गई है. परंतु एक बात यह भी कही जाती है कि अब तक मुस्लिम नुमाइंदों के संसद में कम पहुंचने का एक कारण यह था कि तमाम राजनीतिक पार्टियों ने उन्हें टिकट देने में कंजूसी एवं भेदभाव किया, वहीं एक फैक्टर यह भी था कि मुसलमान मतदान में दिलचस्पी कम लेते थे परंतु इस बार मुसलमानों ने जिस तरह से दिलचस्पी दिखाई है उससे ये प्रतीत होता है कि उनका मत विभाजित नहीं होता तो 2009 की तुलना में ज्यादा सीटें ला सकते थे क्योंकि 147 ऐसे क्षेत्र है जहां मुसलमानों का वोट निर्णायक है और लगभग 40-45 ऐसी सीटें हैं जहां मुसलमानों की आवादी 30-40 प्रतिशत है. अगर इन क्षेत्रों में मुस्लिम वोट विभाजित नहीं होता तो वहां से मुस्लिम उम्मीदवार आसानी से सफल हो सकते थे परंतु ऐसा नहीं हुआ. ■

2014 में मुस्लिम एवं अन्य समूहों का मतप्रतिशत

समुदाय	भाजपा	भाजपा गठबंधन	कांग्रेस	कांग्रेस गठबंधन
हिंदू	39	7	19	3
मुस्लिम	9	1	43	7
ईसाई	8	10	35	2
सिख	16	29	23	1
अन्य	32	8	20	10

2009 में मुस्लिम एवं अन्य समूहों का मतप्रतिशत

समुदाय	कांग्रेस	कांग्रेस गठबंधन	भाजपा	भाजपा गठबंधन	वामपंथी दल	बसपा	अन्य
मुस्लिम	37.2	10.2	3.7	1.9	12.0	5.4	29.5
उच्च ओबीसी	23.2	7.2	21.6	4.9	2.0	3.0	38.1
नीचली ओबीसी	27.1	4.0	22.8	7.5	9.2	3.6	25.9
एससी	27.1	7.0	11.9	2.9	10.9	21.0	19.3
एसटी	38.9	8.7	23.1	2.4	6.9	1.3	18.7
उच्च जाति	45.5	6.9	37.9	5.6	9.0	3.1	12.1
अन्य	32.6	8.4	12.7	11.1	9.1	5.4	20.6

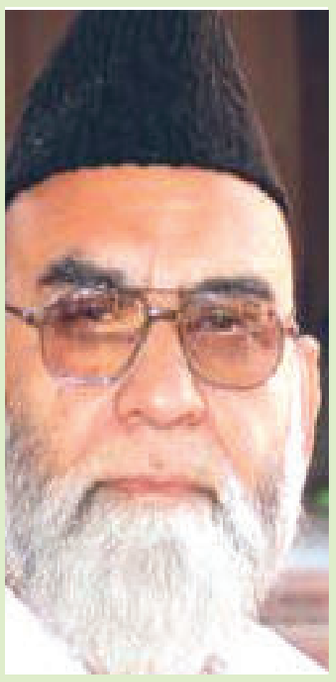
सैय्यद अहमद बुखारी

मौलाना महमूद मदनी

डॉ. मनसूर आलम

मौलाना असग़र अली ईमरान मेहदी सलफ़ी

मुफ्ती मुकर्रम अहमद

मौलाना सैय्यद निज़ामुद्दीन

डॉ. ज़फ़रुल-इस्लाम खान

मौलाना सैय्यद जमालुद्दीन उमरी

मौलाना तौक़ीर रज़ा खान

क़ारी मो. मियां मज़हरी

मौलाना सैय्यद अरशद मदनी

feedback@chauthiduniya.com

लोकसभा चुनाव 2014

नतीजे	मोदी	राहुल	केजरीवाल	अन्य
543	282	44	04	213

एनडीए	
बीजेपी	282
शिवसेना	18
अकाली दल	4
टीडीपी	16
एलजेपी	6
अन्य	10

यूपीए	
कांग्रेस	44
आरजेडी	4
एनसीपी	6
आरएलडी	0
जेएमएम	2
अन्य	3

क्षेत्रीय	
बीएसपी	0
एसपी	5
टीएमसी	34
एडीएमके	37
जेडीयू	2
लेफ्ट	10

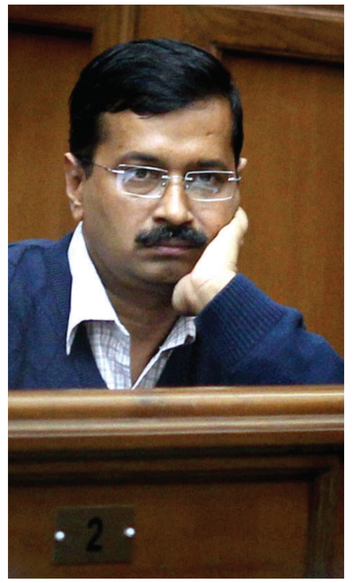

उत्तर प्रदेश	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
80	2	73	0	5	0

बिहार	कांग्रेस+	बीजेपी+	जेडीयू	एसपी	आप
40	7	31	2	0	0

महाराष्ट्र	कांग्रेस+	बीजेपी+	मनसे	एसपी	आप
48	6	41	1	0	0

दिल्ली	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
07	0	07	0	0	0

मध्यप्रदेश	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
29	2	27	0	0	0

गुजरात	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
26	0	26	0	0	0

राजस्थान	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
25	0	25	0	0	0

छत्तीसगढ़	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
11	1	10	0	0	0

झारखंड	कांग्रेस+	बीजेपी+	झामुमो	अन्य	आप
14	0	12	2	0	0

पंजाब	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
13	3	6	0	0	4

प. बंगाल	कांग्रेस+	बीजेपी+	टीएमसी	लेफ्ट	आप
42	4	2	34	2	0

तमिलनाडु	कांग्रेस+	बीजेपी+	अन्नाद्रमुक	पीएमके	अन्य
39	0	2	37	0	0

आंध्रप्रदेश	कांग्रेस+	बीजेपी+	टीआरएस	जगन	ओवैसी
42	2	19	11	9	1

कर्नाटक	कांग्रेस+	बीजेपी+	जदसे	एसपी	आप
28	9	17	2	0	0

हरियाणा	कांग्रेस+	बीजेपी+	इनेलो	एसपी	आप
10	1	7	2	0	0

केरल	कांग्रेस+	बीजेपी+	एलडीएफ	एसपी	आप
20	8	0	12	0	0

उत्तराखंड	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
05	0	5	0	0	0

चंडीगढ़	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
01	0	1	0	0	0

हिमाचलप्रदेश	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
04	0	4	0	0	0

उत्तर प्रदेश	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
80	3	66	2	8	0

जेएंडके	कांग्रेस+	बीजेपी+	एनसी	पीडीपी	आप
06	0	3	0	3	0

असम	कांग्रेस+	बीजेपी+	यूडीएफ	स्वतंत्र	आप
14	3	7	3	1	0

अरुणाचल	कांग्रेस+	बीजेपी+	पीपीए	एनसीपी	आप
02	1	1	0	0	0

गोवा	कांग्रेस+	बीजेपी+	सीपीआई	एसजेपी	आप
02	0	2	0	0	0

मणिपुर	कांग्रेस+	बीजेपी+	एनपीएफ	एनसीपी	आप
02	2	0	0	0	0

मेघालय	कांग्रेस+	बीजेपी+	एनपीपी	यूडीपी	आप
02	1	0	1	0	0

मिजोरम	कांग्रेस+	बीजेपी+	वीएसपी	एसपी	आप
01	1	0	0	0	0

नगालैंड	कांग्रेस+	बीजेपी+	एनपीएफ	एसपी	आप
01	0	0	1	0	0

ओड़िशा	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीजेडी	एसपी	आप
21	0	1	20	0	0

सिक्किम	कांग्रेस+	बीजेपी+	एसडीएफ	एसपी	आप
01	0	0	1	0	0

त्रिपुरा	कांग्रेस+	बीजेपी+	सीपीआई	टीएमसी	आप
02	0	0	2	0	0

पुदुचेरि	कांग्रेस+	बीजेपी+	एनआर	डीएमके	आप
01	0	0	1	0	0

लक्षदीप	कांग्रेस+	बीजेपी+	एनसीपी	एसपी	वामदल
01	0	0	1	8	0

दमन दीव	कांग्रेस+	बीजेपी+	बीएसपी	एसपी	आप
01	0	1	0	0	0

डीएनएच	कांग्रेस+	बीजेपी+	एनसीपी	जेडीयू	आप
01	0	1	0	0	0

अंडमान	कांग्रेस+	बीजेपी+	एनसीपी	एसपी	आप
01	0	1	0	0	0

हारे

9485 वोटों से

56209 वोटों से

1,10,254 वोटों से

40332 वोटों से

40948 वोटों से

5.67 लाख वोटों से

3.71 लाख वोटों से

1.07 लाख वोटों से

1.71 लाख वोटों से

87461 वोटों से

3.32 लाख वोटों से

1.35 लाख वोटों से

1.02 लाख वोटों से

1.04 लाख वोटों से

1.36 लाख वोटों से

4.46 लाख वोटों से

जीते

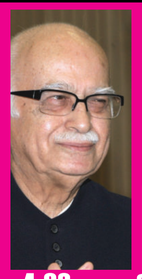
4.63 लाख वोटों से

3.5 लाख से ज्यादा वोटों से

3.65 लाख वोटों से

1.7 लाख से ज्यादा वोटों से

5.67लाख वोटों से

1.90 लाख वोटों से

2.22 लाख वोटों से

2.72 लाख वोटों से

1.20 लाख वोटों से

4.10 लाख वोटों से

2.25 लाख वोटों से

2.65 लाख वोटों से

1.44 लाख वोटों से

3.26 लाख वोटों से

2.84 लाख वोटों से

69 हज़ार से अधिक वोटों से

1.78 लाख वोटों से

कितने गैर-राजनीतिक हुए राजनीतिक दल

चंदन कुमार

feedback@chauthiduniya.com

सोलहवीं लोकसभा के चुनावी नतीजे हम सभी के सामने है. कई मायनों में यह नतीजा ऐतिहासिक है, तो इसका श्रेय काफी हद तक प्रचार अभियान को दिया जाना चाहिए. भारतीय जनता पार्टी ने जिस व्यापक स्तर पर और तकनीक से लेकर पारंपरिक तरीके से चुनाव प्रचार किया, वह अपने आप में अनूठा था. हालांकि, कई मायनों में इन चुनावों में राजनीतिक दलों ने चुनाव लड़ने का गैर-राजनीतिक तरीक़ा अख्तियार किया. कांग्रेस से लेकर भाजपा, सपा, तृणमूल कांग्रेस, जेडी-यू तक ने प्रचार अभियान में राजनीतिक रुख़ अपनाने की जगह गैर-राजनीतिक रवैया अपनाया. चुनावी भाषणों और राजनीतिक बयानों की जगह चुनाव आयोग का रुख़ किया. यह ज़ाहिर बात है कि चुनावों में नेता विरोधी दलों-नेताओं को अपने भाषणों में निशाना बनाते ही हैं, लेकिन पार्टियां उनका जवाब देने की जगह चुनाव आयोग से शिकायत करती नज़र आईं. चाहे वह अमेठी में आम आदमी पार्टी के नेता कुमार विश्वास का यह कहना कि अमेठी में कोई ईरानी-पाकिस्तानी आ जाए, यहां की जनता उन्हें ही चुनेगी. दूसरा मामला नरेंद्र मोदी से संबंधित है. मोदी ने जब वडोदरा से अपना नामांकन दाख़िल किया, तो पहली बार उन्होंने अपने हलफ़नामे में पत्नी का नाम लिखा. इसे लेकर कांग्रेस और कुछ नेताओं ने कानूनी तरीक़े से उनकी उम्मीदवारी खारिज करने की मांग की. इसके अलावा मुद्दों से भटककर नेताओं ने एक-दूसरे की व्यक्तिगत ज़िंदगी को भी चुनावी मुद्दा बना दिया. एक तरफ नरेंद्र मोदी की पत्नी का मामला सामने आया, तो कांग्रेस के उपाध्यक्ष राहुल गांधी से लेकर अन्य नेताओं ने मोदी पर निशाना साधा. वहीं, कांग्रेस, भाजपा, वामपंथी पार्टियां, आम आदमी पार्टी के कार्यकर्ताओं में विचाधारा को लेकर भी स्पष्ट तौर पर भी कमी देखी गई. उनके कार्यकर्ता किसी विचारधारा के तहत चुनावों में प्रचार करने की जगह, किसी भी कीमत पर जीत के लिए जद्दोजेहद करते नज़र आए. इसी प्रक्रिया में राजनीतिक दलों ने विभिन्न दलों से पार्टी छोड़कर आए नेताओं को टिकट थमाया. कांग्रेस नेता जगदम्बिका पाल भाजपा और मोदी के कट्टर आलोचकों में से अव्वल थे, लेकिन चुनावों से ऐन पहले उन्होंने भाजपा का दामन थाम लिया और उन्हें टिकट भी मिल गया. इसी तरह उत्तराखंड के दिग्गज नेता सतपाल महाराज से लेकर केंद्रीय मंत्री डी पुरंदेश्वरी ने कांग्रेस छोड़कर भाजपा की राह पकड़ ली.

क्षेत्र के पुराने कार्यकर्ताओं की जगह फिल्मी सितारों को कई टिकट दिए गए. मसलन, भोजपुरी के गायक-अभिनेता मनोज तिवारी पहले समाजवादी पार्टी के टिकट पर गोरखपुर से चुनाव लड़ चुके थे. भाजपा ने तिवारी को इस बार दिल्ली से टिकट दिया और वे जीत भी गए. चंडीगढ़ में भाजपा की किरण खेर एक तरफ थीं, तो दूसरी तरफ आम आदमी पार्टी की गुल पनाग. कांग्रेस ने जौनपुर से भोजपुरी के ही अभिनेता रवि किशन को टिकट थमाया था, तो गुजरात से भाजपा ने परेश रावल को, पश्चिम बंगाल में बप्पी लाहिड़ी, बाबुल सुप्रियो को टिकट दिया. तृणमूल कांग्रेस ने मुनमुन सेन को टिकट दिया और वे जीती भीं. आप ने लखनऊ सीट पर भाजपा के राजनाथ सिंह के मुकाबले जावेद जाफरी को उतारा.

इसके अलावा विचारधारा को लेकर काफी सख्त मानी जाने वाली सीपीआई-एमएल जैसी पार्टी खुद को छोड़कर आम आदमी पार्टी के लिए प्रचार करते दिखे. बनारस में सीपीआई-एमएल जैसी राजनीतिक पार्टी मोदी के ख़िलाफ़ अरविंद केजरीवाल के समर्थन में प्रचार-प्रसार करते नजर आई. इनसे ज़ाहिर होता है कि राजनीतिक दलों के लिए विचारधारा की जगह जीत सबसे बड़े मुद्दा था. आम आदमी पार्टी की शाजिया इल्मी सांप्रयादियक अपील से संबंधित विवाद में फंसती नजर आई, तो प्रियंका गांधी और नरेंद्र मोदी के बीच नीच राजनीति का मामला गर्मा गया. इसेक बाद मोदी और ममता बनर्जी के बीच बांग्लादेशी विस्थापन के मुद्दे पर भी काफी विवाद हुआ.

क्षेत्र के पुराने कार्यकर्ताओं की जगह फिल्मी सितारों को कई टिकट दिए गए. भोजपुरी के गायक-अभिनेता मनोज तिवारी पहले समाजवादी पार्टी के टिकट पर गोरखपुर से चुनाव लड़ चुके थे. भाजपा ने तिवारी को इस बार दिल्ली से टिकट दिया और वे जीत भी गए. चंडीगढ़ में भाजपा की किरण खेर एक तरफ थीं, तो दूसरी तरफ आम आदमी पार्टी की गुल पनाग.

राजनीतिक दलों के गैर-राजनीतिक होने का एक उदाहरण यह भी है कि चुनाव आयोग के पास शिकायतों का अंबार लग गया. हालांकि, चुनाव आयोग के पास कुल कितनी शिकायतें आईं, इसका सटीक आंकड़ा सामने नहीं आया है, लेकिन राजनीतिक बयानों की काट को लेकर चुनाव आयोग के पास शिकायती पत्र लेकर जाना यह साबित करता है कि पार्टियां एक-दूसरे से राजनीतिक जमीन पर एक-दूसरे से मुकाबला करने की जगह गैर-राजनीतिक यानी कानूनी तरीके का सहारा ले रही थीं. चुनाव आयोग के पास पिछले तीन लोकसभा चुनावों के दौरान आचार संहिता के उल्लंघन पर क्या कार्रवाई की गई, इसका कोई आंकड़ा नहीं है. सूचना के अधिकार के तहत प्राप्त की गई जानकारी में कहा गया है कि चुनाव आयोग किसी भी नियम के उल्लंघन पर कार्रवाई के लिए कोई निश्चित समय सीमा तय नहीं करता है. इसमें कहा गया है कि कार्रवाई प्राथमिकता के आधार पर की जाती है. ■

feedback@chauthiduniya.com

उत्तर प्रदेश : बिखरा मुस्लिम वोट बैंक, हिन्दू वोटों का ध्रुवीकरण

संजय सक्सेना

उत्तर प्रदेश की सरजमी पर इस लोकसभा चुनाव में कई तरीकों से नया इतिहास लिखा गया. संगठनात्मक स्तर से लेकर नेताओं की चुनावी रणनीति तक में तमाम बदलाव देखने को मिले. पिछले कई लोकसभा-विधान सभा चुनाव कांग्रेस बनाम अन्य दलों के बीच लड़े गये थे, जिसका फायदा इठा कर कांग्रेस ने देश पर वर्षों तक राज किया, लेकिन इस बार कांग्रेस, बसपा, सपा और यहां तक नई-नवेली आम आदमी पार्टी तक तराजू के एक पलड़े पर बैठे दिखे तो दूसरे पल्ले पर नरेन्द्र मोदी अकेले थे, जो कांग्रेस के लिये शुभ संकेत नहीं रहा. इसका बड़ा नुकसान कांग्रेस सहित सपा-बसपा, लोकदल सभी को उठाना पड़ा. सत्ता विरोधी लहर और मोदी के तांनों से कांग्रेस का थिंक टैंक ही नहीं गांधी परिवार तक पूरे प्रचार के दौरान तमतमाया रहा. हार का डर चेहरे पर दिखा.

पूर्व प्रधानमंत्री वीपी सिंह के बाद पहली बार देश की राजनीति में कोई ऐसा नेता पैदा हुआ जिसने नेहरू-गांधी परिवार को सीधे-सीधे चुनौती देकर इसकी चूलें हिला दीं. गांधी परिवार की सोच-समझ पर सवाल खड़े किए गए, वंशवाद, भ्रष्टाचार, मंहगाई, तुष्टिकरण, सीमा पर जवानों के सिर काटे जाने की घटना, राजीव गांधी का गुस्सा, पूर्व प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव, कांग्रेस के अध्यक्ष रहे सीताराम केसरी के साथ गांधी परिवार का गैर जिम्मेदाराना व्यवहार, सोनिया के दामाद रॉबर्ट वाड्रा का जमीन घोटाला, प्रियंका वाड्रा की फजीहत, शायद ही कोई ऐसा मुद्दा बचा होगा जिसको लेकर दस जनपथ पर हमला नहीं बोला गया हो. दिल्ली की लड़ाई में कई बार तो हालात इतने ख़राब होते दिखे कि गांधी परिवार की साख को बचाए रखने के लिए कांग्रेस की पूरी टीम को मोर्चा संभालना पड़ गया.

गांधी परिवार का 'हमलावार' कोई और नहीं गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी थे.कांग्रेस के लिए हालात इतने जटिल हो गए कि जो राहुल गांधी अमेठी में प्रचार करने तक नहीं जाते थे, इन्हीं राहुल गांधी को मोदी ने अपने संसदीय क्षेत्र अमेठी में मतदान के दिन बूथ-बूथ पसीना बहाने को मजबूर कर दिया. राहुल को यह ताना भी सुनने को मिला कि जो लोग पूरे देश को अपनी जेब में समझते हैं, वह अमेठी में दर-दर भटक रहे हैं. मोदी ने अपने बलबूते पर वर्षों से सोई भाजपा को जगा दिया तो प्रदेश में कांग्रेस ही नहीं जातिवाद की राजनीति करने वाली बसपा-समाजवादी पार्टी तक को चिंता करने को मजबूर कर दिया कि सिर्फ जातिवाद के सहारे चुनाव नहीं जीता जा सकता है. मोदी की ताजपोशी के बाद तो ऐसा लगता है कि सभी दलों को अपनी विचारधारा और राजनीतिक सोच की नये सिरे से समीक्षा करनी होगी.

मोदी फैक्टर के चलते यूपी में कांग्रेस-बसपा और समाजवादी नेताओं के पैरों तले सियासी जमीन खिसक गई तो यह भी साफ हो गया कि मोदी पर जितना कीचड़ उछाला गया वह उतना निखर कर सामने आए. तीखे भाषण देने वाले सपा के आजम खान, सांसद नरेश अग्रवाल, कांग्रेस नेता बेनी प्रसाद वर्मा, सलमान खुर्शीद आदि को जनता ने धूल चटा दी. किसी को कहने में यह संकोच नहीं होना चाहिए कि एक वोट बैंक को खुश करने के चक्कर में भाजपा विरोधी तमाम नेताओं की वजह से राजनीति का ग्राफ काफी नीचे गिर गया. कांग्रेस के सहारनपुर के प्रत्याशी को तो मोदी के खिलाफ अभद्र भाषा के लिए जेल तक की हवा खानी पड़ गई. इसी तरह साम्प्रदायिक भाषा बोलने के कारण सपा नेता आजम खान और भाजपा के यूपी प्रभारी अमित शाह की रैलियों और रोड शो पर चुनाव आयोग को रोक तक लगानी पड़ गई. अमित शाह ने गलती मानी तो आयोग ने इन पर से बैन हटा लिया, लेकिन आजम खान अड़े रहे जिसका खामियाजा इन्हें प्रचार से दूर रहकर भुगतना पड़ा. इसी तरह से कांग्रेस के नेता और केन्द्रीय मंत्री बेनी प्रसाद वर्मा को भी बदजुबानी के लिए चुनाव आयोग की फटकार खानी पड़ी.

मोदी का सिक्का ऐसा चला कि यूपी में जातीय समीकरण पूरी तरह से बिखर गया. बड़ी संख्या में बसपा सुप्रीमो मायावती के दलित वोटरों ने मोदी वाले खाने का बटन दबा दिया तो समाजवादी पार्टी को भी मुस्लिम और पिछड़ा वोटरों ने काफी नुकसान पहुंचाया. जातिवाद की राजनीति के सहारे सत्ता की रोटियां सेंकने में माहिर माया का किला तो पूरी तरह से ध्वस्त हुआ ही मुलायम को इस बार अपना कुनबा बचाना मुश्किल हो गया. मुजफ्फरनगर दंगों के बाद समाजवादी पार्टी-बसपा और कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टिकरण की पराकाष्ठा का ही नतीजा था कि इस तरह (मुस्लिम तुष्टिकरण) की राजनीति से नाराज होकर तमाम वर्गों के मतदाता अबकी से जातिवाद को भूलकर मोदी के पीछे मजबूती के साथ लामबंद हो गए. राहुल से लेकर माया-मुलायम, राष्ट्रीय लोकदल के चौधरी अजित सिंह, आम आदमी पार्टी के अरविंद केजरीवाल तक मोदी पर साम्प्रदायिक होने का अरोप लगाते रहे, लेकिन मोदी ने अपनी जुबान से कोई ऐसा जुमला नहीं बोला जिससे लगे कि वह साम्प्रदायिक राजनीति के पक्षधर हैं, जिसका फायदा उन्हें जमीनी सियासत पर मिला. मोदी का नारा,'सबका साथ-सबका विकास' लोगों को खूब रास आया. मोदी के विकास और सबको साथ लेकर चलने के नारे की हवा विरोधियों ने गुजरात के 2002 के दंगों की आड़ में निकालने की भरसक कोशिश की लेकिन कुछ मुस्लिम बुद्धिजीवियों ने ही इस पर प्रश्न खड़ा कर दिया. पूरे चुनाव प्रचार के दौरान मुजफ्फरनगर का दंगा भाजपा से अधिक समाजवादी पार्टी के नेताओं को सताता रहा. इसके लिए समाजवादी नेता कोई काट नहीं निकाल पाए.

बहरहाल, बात भाजपा की कि जाए तो अबकी से भारतीय जनता पार्टी अपवाद को छोड़कर यूपी में कहीं भी चुनाव लड़ती दिखी. भाजपा की जगह नरेन्द्र मोदी ने ले रखी थी. अबकी बार भाजपा सरकार की जगह, अबकी बार मोदी सरकार के नारे फिजाओं में थे. यूपी भाजपा के तमाम सूरमा मोदी के आगे-पीछे घूमते दिखे तो ऐसे नेताओं की संख्या भी कम नहीं थी जिनकी कहीं कोई पूछ नहीं हुई. न लखनऊ के बुजुर्ग सांसद लालजी टंडन का गुस्सा काम आया, न वाराणसी से चुनाव लड़ने की जिद कर रहे दिग्गज नेता मुरली मनोहर जोशी के सामने आलाकमान ने हथियार डाले. उत्तर प्रदेश भारतीय जनता पार्टी की चुनावी कमान तक गुजरात से आये और नरेन्द्र मोदी के करीबी रहे अमित शाह के हाथों में रही, कल्याण सिंह जैसे नेता तक को टिकट चाहने वालों से कहना पड़ गया कि अबकी से टिकट के दावेदार उनके यहां हाजिरी न लगाएं. अमित शाह के कई फैसले भाजपा के लिए मील का पत्थर साबित हुए. मोदी को वाराणसी से चुनाव लड़ाना भी शाह की रणनीति का हिस्सा था, जिसका पूरा फायदा भाजपा को मिला. कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि यूपी में अपनी जड़े जमाए रखने के लिऐ सपा-बसपा, कांग्रेस, लोकदल सभी को नए सिरे से विचार करना होगा. अब जातिवाद और वंशवाद की राजनीति ज्यादा दिन चलने वाली नहीं है. राष्ट्रीय लोकदल का सफाया यूपी की सियासत को कई संकते दे गया है. इसके साथ यह भी तय हो गया है कि जातिवाद की राजनीतिक करने वाले गैर भाजपा दलों की तमाम साजिशों के बाद भी उत्तर प्रदेश विधान सभा का अगला चुनाव भी लोकसभा चुनाव की तरह विकास के मुद्दे पर ही लड़ा जायेगा. ■

प्रमुख महिला प्रत्याशी जिन्होंने चुनाव में जीत हासिल की है.

सुमित्रा महाजन
भाजपा (इंदौर, मध्यप्रदेश)

प्रमुख महिला प्रत्याशी जिन्होंने चुनाव में जीत हासिल की है.

हरसिमरत कौर
अकाली दल (भटिंडा, पंजाब)

विज्ञापन हेतु संपर्क करें : email : advt@chauthiduniya.com

लोकतंत्र के इस महापर्व में निर्वाचन आयोग की भूमिका

इस चुनाव में आयोग ने एक उम्मीदवार के द्वारा अधिकतम खर्च की सीमा 40 लाख से बढ़ा कर 70 लाख रुपये कर दी, जबकि आयोग द्वारा 2009 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के मुताबिक़ ज्यादातर उम्मीदवारों ने तय शुदा राशि का आधा ही खर्च किया था.

शफ़ीक़ आलम

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, इसलिए निश्चित रूप से भारतीय आम चुनाव की प्रक्रिया दुनिया के किसी भी देश में होने वाली सब से बड़ी चुनावी प्रक्रिया है. इस प्रक्रिया को निष्पक्ष और कारगर तरीके से सम्पन्न कराने की ज़िम्मेदारी निर्वाचन आयोग की है, जो एक संवैधानिक संस्था है. भारतीय संविधान ने निर्वाचन आयोग को संसद, प्रत्येक राज्य के विधानमंडल और राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के पदों के चुनाव कराने और चुनावी प्रक्रिया के नियंत्रण की सम्पूर्ण जिम्मेदारी दे रखी है. आयोग 25 जनवरी 1950 को वजूद में आया था, और तब से लेकर आज तक इसी संस्था की देख-रेख में भारत में चुनाव होते आए हैं. अगर आज भारत खुद को दुनिया के राजनीतिक मानचित्र पर एक जीवंत लोकतंत्र के रूप में स्थापित करने में कामयाब हुआ है तो इसमें इस संस्था का भी कुछ न कुछ योगदान ज़रूर है. लेकिन ऐसा नहीं है कि आयोग (खास तौर पर चुनावों के दौरान) के काम-काज और चुनाव के संचालन व इसकी व्यवस्था पर उंगली नहीं उठती. हालिया आम चुनाव में भी यह संस्था विवादों में घिरी रही.

16 मई को आम चुनाव के नतीजों की घोषणा के साथ ही दो महीने 10 दिन तक चलने वाली सोलहवीं लोक सभा चुनाव की प्रक्रिया समाप्त हो गई. यदि एक-दो छिटपुट अप्रिय घटनाओं और कुछ बूथों पर गड़बड़ी के आरोपों को छोड़ दिया जाए तो हिंसा की कोई बड़ी वारदात नहीं हुई और मतदान की प्रक्रिया शांतिपूर्वक संपन्न हो गई, जिसका श्रेय भारतीय मतदाताओं के साथ-साथ निश्चित रूप से निर्वाचन आयोग को देना चाहिए. बहरहाल, चुनावों के मौसम में सियासी पारा इतना ऊपर चढ़ जाता है की सियासी पार्टियों के लिए चुनाव आयोग द्वारा जारी दिशानिर्देश और आदर्श आचार संहिता चुनाव प्रचार में बाधा प्रतीत होने लगते हैं, लिहाज़ा राजनीतिक दल और उम्मीदवार बेरोक-टोक इनकी धज्जियां उड़ाने में संकोच नहीं करते.

इस आम चुनाव में आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के इतने मामले सामने आए कि ऐसा लगने लगा कि जैसे हर राजनेता अपने वोटरों को लुभाने के लिए सिर्फ़ आचार संहिता ही नहीं बल्कि मर्यादा की सभी सीमाओं को भी लांघ सकता है. आयोग ने इन मामलों में कई उम्मीदवारों को नोटिस भी दिया, लेकिन उन राजनेताओं के तेवर देख कर ऐसा नहीं लगा कि किसी नोटिस का उन पर कोई खास असर हुआ हो. कई मामलों में आयोग पर विभिन्न दलों द्वारा पक्षपात कर आरोप भी लगा. मिसाल के तौर पर आज़म खान और उनकी पार्टी को शिकायत हो सकती है कि भड़काऊ भाषण देने के आरोप में उनके चुनाव प्रचार पर पाबन्दी लगा दी गई, जबकि अमित शाह को इसी तरह के आरोपों के बावजूद छूट दे दी गई. जहां मतदान केन्द्र पर चुनाव के दिन चुनाव चिन्ह के साथ सेल्फ़ी (मोबाइल से फोटो) तैयार करने और प्रेस कांफ्रेंस करने पर नरेन्द्र मोदी के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई, वहीं राहुल गांधी को चुनाव के दिन मतदान केन्द्र में दाखिल होने और इवीएम के पास जाने के बाद भी क्लीन चिट दे दि गई. बहरहाल, पहली नज़र में आदर्श आचार संहिता के बेअसर होने का जो कारण समझ में आता है वह है पिछले चुनावों में दर्ज मामलों पर कार्रवाई का अभाव.

इसका कारण जानने के लिए भारतीय निर्वाचन आयोग में इस साल अप्रैल में आरटीआई कार्यकर्ता अनिल गलगली ने एक आरटीआई आवेदन दाखिल करके जवाब-तलब किया था कि पिछले तीन आम चुनाव में आचार संहिता के उल्लंघन के कितने मामले दर्ज किए गए और दोषी उम्मीदवारों पर क्या कार्रवाई हुई? उन्होंने यह भी पूछा था कि क्या इन मामलों की सुनवाई की कोई समय सीमा तय है? इन सवालों का जवाब देने से आयोग ने यह कह कर इनकार कर दिया कि इस सम्बन्ध में दंड निर्धारित करने की समय सीमा, और इन सभी मामलों के रिकॉर्ड को एक साथ संकलित करने की कोई साफ़ नीति नहीं है, जिसकी वजह से इस सम्बन्ध में जानकारी नहीं दी जा सकती. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये सारे क़ानून दंतविहीन और अप्रभावी क्यों हैं?

चुनावों में भी पक्षपातपूर्ण कवरेज और पेड न्यूज़ प्रसारित/प्रकाशित करने के आरोप मेनस्ट्रीम मीडिया पर लगे और अगर टेलीविज़न चैनलों के चुनाव कवरेज का जायज़ा लिया जाए तो मालूम होगा इन चुनावों में सिर्फ भाजपा, कांग्रेस और आम आदमी पार्टी ही चुनाव मैदान में थे. किसी अन्य दल का कोई वजूद ही नहीं था. मीडिया लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप जाना जाता है. मीडिया सिर्फ ख़बरों के प्रसार का माध्यम ही नहीं है बल्कि किसी भी मुद्दे पर जनमत तैयार करने का एक महत्वपूर्ण जरिया भी है. हालांकि यह मुश्किल काम है, लेकिन फिर भी चुनाव के दौरान निर्वाचन आयोग को मीडिया कवरेज पर भी नज़र रखने पर विचार करना चाहिए ताकि हर एक पार्टी को बराबर का कवरेज मिल सके. साथ ही सूचना क्रांति के इस दौर में चरणबद्ध मतदान में एक और खामी नज़र आई कि किसी एक क्षेत्र में चुनाव प्रचार की समय सीमा की समाप्ति के बाद भी टेलीविज़न पर बड़ी-बड़ी रैलियां, पार्टियों घोषणापत्र और प्रेस कांफ्रेंस का प्रसारण जारी रहा. इस सम्बन्ध में कुछ ठोस, स्पष्ट और व्यापक क़ानून बनाने की ज़रूरत है.

चुनाव में जनता की भागीदारी

कुछ दशक पहले तक देश में चुनाव के मौसम का एक सामाजिक पहलू भी था, जिसमें चुनावों को न सिर्फ सरकार बनाने की क़वायद की तरह देखता जाता था बल्कि इसे एक उत्सव की तरह भी मनाया जाता था. बूढ़े, जवान, बच्चे, महिलाएं सभी में एक तरह का उत्साह. हर मतदान केन्द्र पर मेले जैसा माहौल होता था. पोस्टरों, बैनरों और पर्चों पर कोई पाबन्दी नहीं थी. लेकिन धीरे-धीरे चुनाव में हिंसा और अपराधी तत्व शामिल होने लगे. बूथ कैपचरिंग, मतदान केन्द्रों पर हिंसा आम होने लगी. इसके साथ ही आम लोगों की लोकतंत्र में भागीदारी भी कम होने लगी. समय कुछ और आगे बढ़ा और बूथ लूटरे जो दूसरे नेताओं के लिए बूथ लूटते थे अब खुद के लिए बूथ लूटने लगे. इस तरह भारतीय राजनीति में बाहुबलियों क प्रवेश प्रारम्भ हुआ. इस अवधि में शायद ही कोई चुनाव हुआ हो जिसमें खून-खराबा न हुआ हो.

इसी पृष्ठभूमि में चुनाव आयोग को सक्रियता दिखानी पड़ी और कुछ ऐसे कदम उठाने पड़े जिनकी आवश्यकता थी. चुनावों को चरणबद्ध तरीके से करवाना ऐसा ही एक क़दम था. नतीजा यह हुआ कि जो मतदान एक दिन में समाप्त हो जाता था और पूरी चुनावी प्रक्रिया दस से पन्द्रह दिन में पूरी हो जाती थी अब उसमें दो से ढाई महीने का समय लगने लगा है. सोलहवीं लोक सभा के लिए हालिया आम चुनाव नौ चरणों में और दो महीने दस दिन की अवधी में संपन्न हुए. ज़ाहिर है इतनी लम्बी अवधि में थका देने वाली होती है और बहुत सारी प्रशासनिक समस्याएं भी पैदा हो जाती हैं. इसलिए इस अवधि को जरूरत से ज्यादा लंबा होने से बचाने की जरूरत है.

चुनाव खर्च

इस चुनाव में आयोग ने एक उम्मीदवार के द्वारा अधिकतम खर्च की सीमा 40 लाख से बढ़ा कर 70 लाख रुपये कर दी जबकि आयोग द्वारा 2009 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के मुताबिक़ ज्यादातर उम्मीदवारों ने तयशुदा राशि का आधा ही खर्च किया था. हालांकि राजनीतिक दलों के खर्च की कोई सीमा नहीं है (देखिए पैसा चुनाव जीत रहा है, मुद्दा नहीं. चौथी दुनिया, 5 मई 2014) जो चुनाव में स्टेट फंडिंग की सिफारिश को मज़बूत करता है. क्योंकि छोटी पार्टियों को बराबरी का मौक़ा नहीं मिल पाता. चुनाव आयोग और नव निर्वाचित संसद से यह उम्मीद रखनी चाहिए कि ये न केवल राजनीति के अपराधीकरण पर अंकुश लगाएगे बल्कि वह उत्सव के महौल, जो भारतीय चुनावों की खासियत थी, को भी बहाल कर जम्हूरियत के इस त्योहार को और खूबसूरत, समावेशी और सहभागितापूर्ण बनाएंगे. अनिवार्य मतदान के प्रस्ताव पर गंभीरता पूर्वक विचार करेंगे ताकि लोकतंत्र में आम लोगों के विश्वास को एक बार फिर से ज़िंदा किया जा सके और देश जिस बुलंदियों पर पहुँचने के सपने देख रह है, उन सपनों को पूरा किया जा सके.

feedback@chauthiduniya.com

चुनावों पर विदशी मीडिया की पैनी निगाह

अरुण तिवारी

देश की 16वीं लोकसभा के लिए चुनाव समाप्त हो चुके हैं. कई मायनों में ऐतिहासिक रहे इस चुनाव पर न सिर्फ देश के मीडिया की नजर रही बल्कि विदेशी मीडिया ने भी इस पर पूरी निगाह रखी. विदेशी मीडिया में पार्टियों के चुनावी प्रचार अभियान सुर्खियां बनते रहे. इन चुनावों को कई उपमाओं से नवाजा गया. भारतीय चुनावी इतिहास के सबसे महंगे चुनाव की उपमा से भी नवाजा गया. दरअसल दुनिया के सबसे बड़े देशों में शुमार होने के कारण भारतीय चुनावों पर हमेशा ही विदेशी मीडिया की निगाहें बनी रहती है. आइए निगाह डालते हैं कि सम्पूर्ण चुनाव अभियान के दौरान विदेशी मीडिया ने आखिर किस तरह से नजरें रखीं और क्या प्रतिक्रियाएं दीं.

पाकिस्तानी मीडिया

भारतीय जनता पार्टी ने जब नरेंद्र मोदी को जब प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया, उसके बाद से पाकिस्तानी मीडिया में उनके प्रति एक रोष देखा गया. गुजरात दंगों के कारण वहां के मीडिया में मोदी की एक कट्टर छवि है.

मोदी का नाम गुजरात दंगों से जोड़ते हुए काफी कुछ पाकिस्तानी मीडिया में लिखा गया. सामान्यतया पड़ोसी मुल्क की मीडिया की यही मानना रहा कि मोदी के पीएम बनने के बाद देश में अल्पसंख्यकों विशेषरूप से

मुसलमानों का रहना दूभर हो जाएगा. इसका कारण यह है कि मोदी की छवि वहां के मीडिया में एक कट्टर हिंदू राष्ट्रवादी की है.

इस दौरान जिस एक बात की सबसे ज्यादा चर्चा की गई वह यह है कि कांग्रेस और भाजपा के नेताओं के भड़काऊ बयान काफी सुर्खियों में रहे. मीडिया में कई ऐसी रिपोर्ट लिखी गईं जिनमें गुजरात मॉडल को बकवास करार दिया गया. इन रिपोर्टों में गुजरात मॉडल की कई खामियों की चर्चा की गई. कई विदेशी पत्रकार तो सिर्फ इस गुजरात मॉडल का समझने के लिए राज्य में डेरा डाले रहे.

दरअसल पाकिस्तानी मीडिया में भारतीय चुनाव की तारीफ के साथ-साथ भडकाऊ बयानों को सबसे ज्यादा तरजीह दी जाती है. विशेषरूप से उन बयानों को जो किसी संप्रदाय विशेष के खिलाफ दिए गए हों.

ब्रिटिश मीडिया

ब्रिटेन के अखबारों में भाजपा के उम्मीदवार नरेंद्र मोदी को लेकर मिली-जुली प्रतिक्रियाएं देखने को मिलीं. यहां से जो खबर सबसे सुर्खियों में आई थी वह यह है कि देश में रहने वाले भारतवंशियों ने और बुद्धिजीवियों ने नरेंद्र मोदी का एक सार्वजनिक खत लिखकर विरोध किया था. वहीं, अखबारों के संपादकीय लेखों में भी मोदी के पीएम बनने को भारत के लिए खतरा बताया था. एक विशेष बात देखी गई कि टेलीग्राफ के नई दिल्ली स्थित पत्रकार ने राहुल गांधी और सोनिया गांधी के संसदीय क्षेत्र का दौरा कर अच्छी कवरेज देने की

कोशिश की.

देश के अखबार द गार्जियन ने एग्जिट पोल के नतीजों के बारे में कहा था कि इन नतीजों में कुछ भी चौंकाने जैसा नहीं है. चुनाव होने से पहले जितने भी सर्वे मीडिया में दिखाए गए, एग्जिट पोल के नतीजे भी कमोबेश वैसे ही हैं. युवाओं को अब नई सरकार से बहुत आशा है. गार्जियन ने युवा मतदाताओं से पूछा कि वे नई सरकार से क्या चाहते हैं. तो उन्होंने शिक्षा, रोजगार, भ्रष्टाचार और साफ छवि की सरकार जैसे मुद्दे उठाए.

गल्फ मीडिया

मध्य पूर्व एशिया में ज्यादातर मुस्लिमों राष्ट्रों की उपस्थिति होने के बावजूद भी इन चुनावों

को विशेष चश्मे से नहीं देखा गया. काफी लंबे समय तक चले चुनावों को यहां के मीडिया ने निरपेक्ष भाव से कवर किया और खबरों को कोई एंगल देने की कोशिश नहीं की गई. चाहे वह भारतीय नेताओं की जुबानी जंग रही हो या फिर देश की चुनावी राजधानी बने वाराणसी का मामला, यहां के मीडिया ने पाठकों के बीच खबरों को सीधे खबरों के रूप में ही पहुंचान मुनासिब समझा.

अमेरिकी मीडिया

अमेरिकी मीडिया में नरेंद्र मोदी को लेकर कई तरह के मतभेद रहे. अमेरिकी सरकार मोदी को वीजा नहीं देती है, लेकिन पीएम बनने के बाद अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा नरेंद्र मोदी को बधाई देने वालों की पहली पायदान में शामिल रहे. ऐसा माना जा सकता है कि इसका सबसे बड़ा कारण है कि अमेरिका को भारत की जरूरत है. भविष्य में भारत से संबंध अच्छे रखने के लिए अमेरिका मोदी के प्रति अपनी नीति बदल सकता है. वहीं, अमेरिकी सीनेट में कई सांसद मोदी के पक्ष में भी दिखाई देते हैं. ■

नतीजों पर प्रतिक्रिया

पाकिस्तान के दैनिक अखबार डॉन ने भारत में चुनाव के नतीजे आने के बाद कहा कि भारत की जनता ने महंगाई, लचर आर्थिक नीतियों और भ्रष्टाचार के लिए कांग्रेस को जिम्मेदार मानते हुए हिन्दू राष्ट्रवादी ताकतों को सत्ता सौंप दी है. ऐसे में भारत में भाजपा 30 साल बाद अपने दम पर सरकार बनाने जा रही है. आगे लिखा कि सत्ता बदलने की चर्चाओं के बीच भारतीय स्टॉक मार्केट ने भी पिछले एक हफ्ते में 5 प्रतिशत और चुनाव के रिजल्ट के बाद सेंसेक्स में 6 प्रतिशत का रिकॉर्ड उछाल देखने को मिला. सिर्फ इतना ही नहीं एक दूसरे बड़े अखबार डेली टाइम्स ने लिखा कि चुनाव के नतीजों को देखते हुए भारत में सुरक्षा व्यवस्था तगड़ी कर दी गई. अखबार के अनुसार एग्जिट पोल के अनुसार पहले ही कट्टरपंथी नेता नरेंद्र मोदी को पीएम स्वीकार करने की बात कह दी गई थी, जिस पर नतीजे आने के बाद मुहर लग गई है.

अमेरिकी अखबार वाशिंगटन पोस्ट ने लिखा कि मुताबिक ऐतिहासिक जीत दर्ज करते हुए हिन्दू राष्ट्रवादी नेता नरेंद्र मोदी भारत के अगले पीएम बनने जा रहे हैं. अखबार के मुताबिक 63 वर्षीय नरेंद्र मोदी गुजरात के सीएम हैं और उन्होंने देश को आर्थिक रूप से सुदृढ करने का वादा कर लोगों में जो आशा जगाई, उसी का नतीजा है कि चुनाव के नतीजों में 10 साल से सत्ता चला रही कांग्रेस को करारी हार का सामना करना पड़ा.

एक और अमेरिकी अखबार न्यू यॉर्क टाइम्स ने लिखा कि आजादी के बाद से सबसे ज्यादा समय तक शासन करने वाली कांग्रेस पार्टी ने भाजपा के हाथों हार स्वीकार कर ली है. इसका कारण कांग्रेस की लचर आर्थिक नीतियों और पार्टी के 10 साल के शासन काल में लगातार होने वाले घोटालों को माना जा रहा है. वहीं पार्टी की रीढ़ माने जाने वाले राहुल गांधी जो कि पिछले चुनाव में करीब 3 लाख वोटों से जीते थे, इस बार उनकी अपनी सीट भी मुश्किल से बची है. वहीं ब्रिटिश अखबार टेलीग्राफ ने लिखा कि राष्ट्रवादी हिन्दू और विवादास्पद नेता नरेंद्र मोदी ने नारा दिया था कि अच्छे दिन आने वाले हैं. इसका पहला उदाहरण है भाजपा की यह ऐतिहासिक जीत. ■

feedback@chauthiduniya.com

प्रमुख महिला प्रत्याशी जिन्होंने चुनाव में जीत हासिल किया है.

उमा भारती
भाजपा (झांसी, उत्तर प्रदेश)

विनोद खन्ना

पंजाब के गुरुदासपुर से भाजपा ने विनोद खन्ना को उम्मीदवार बनाया था. इससे पहले वह दो बार इसी सीट से लोकसभा के लिए निर्वाचित हो चुके थे. विनोद खन्ना ने 1997 में भाजपा ज्वाइन की थी और 1998 में गुरुदासपुर से लोकसभा चुनाव में जीत दर्ज की थी. इसके बाद वह केंद्रीय मंत्री बने. 2004 में भी उन्होंने गुरुदासपुर से एक बार फिर जीत दर्ज की, लेकिन 2009 के लोकसभा चुनाव में वह हार गए थे. पर इस बार विनोद खन्ना यहां एक बार फिर जीत हासिल की है.■

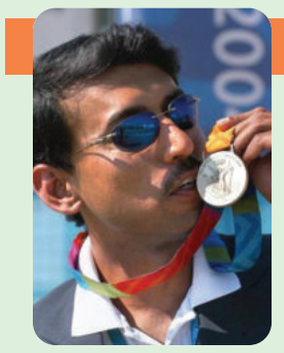

राज्यवर्धन सिंह राठौड़

राज्यवर्धन सिंह राठौड़ ने राजस्थान में भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह और पार्टी के पीएम प्रत्याशी नरेंद्र मोदी की उपस्थिति में भाजपा में शामिल होकर राजनीति की शुरुआत की. भाजपा ने उन्हें जयपुर(ग्रामीण) लोकसभा सीट से चुनाव मैदान में उतारा. राज्यवर्धन एथेंस ओलंपिक में भारत के एकमात्र पदक जीतने वाले खिलाड़ी थे. वर्ष 2004 में उन्हें राजीव गांधी खेल रत्न पुरस्कार से सम्मानित किया गया था. राज्यवर्द्धन यहां से चुनाव जीत गए हैं.■

मुनमुन सेन

बांग्ला, हिंदी, तमिल, तेलुगु, मलयालम, मराठी, कन्नड़ जैसी कई भाषाओं की फिल्मों में काम कर चुकीं मुनमुन सेन को ममता बनर्जी ने बकुंरा लोकसभा सीट से उम्मीदवार बनाया था. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने प्रदेश से तमाम ऐसे चेहरों को उम्मीदवार बनाया है, जिनसे वोट खींचने की उन्हें जरा भी उम्मीद है. उन्होंने ग्लैमर वर्ल्ड के कई चेहरों को पार्टी में शामिल किया है. यहां से मुनमुन सेन जीत गईं.■

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

सितारे नहीं, इस चुनाव के महानायक हैं नरेंद्र मोदी

फिल्म कलाकारों और खिलाड़ियों के स्टार पॉवर को भुनाने के लिए पार्टियां उन्हें टिकट देती रही हैं, ये स्टार भी अपनी फेस वैल्यू के बल पर चुनाव जीतते रहे हैं. पर इस बार का चुनाव कुछ अलग इबारत लिख रहा है. इस बार के चुनाव के एक मात्र महानायक हैं नरेंद्र मोदी. उनके नाम का सहारा लेकर उनकी पार्टी से खड़े सितारों ने भारी बहुमत से जीत दर्ज कराई है. कई और सितारे और खिलाड़ी जो दूसरी पार्टियों की टिकट से चुनाव लड़े लोकप्रियता के बावजूद हार गए.

प्रियंका प्रियम तिवारी

feedback@chauthiduniya.com

कीर्ति आजाद

कीर्ति भाजपा के टिकट पर इस बार भी बिहार के दरभंगा लोकसभा सीट से चुनाव मैदान में थे. क्रिकेट के मैदान से राजनीति में आए कीर्ति आजाद के पिता भागवत झा आजाद बिहार के मुख्यमंत्री थे. कीर्ति आजाद 1993 में दिल्ली गोल मार्केट विधानसभा सीट से विधायक रहे हैं. इसके बाद वह भाजपा के टिकट पर 1999 और 2009 में दरभंगा सीट से सांसद चुने गए थे. भाजपा लहर और अपनी लोकप्रियता के बल पर कीर्ति आजाद यहां से चुनाव जीत गए हैं.■

दीपक अधिकारी देव

बंगाली अभिनेता देव को ममता बनर्जी ने पश्चिम बंगाल के घटाल लोकसभा क्षेत्र से उम्मीदवार बनाया था. युवा वोट को गोलबंद करने के लिए ममता बनर्जी ने देव को टिकट दिया है. देव अभिनेता और गायक हैं. वह युवाओं में काफी लोकप्रिय हैं. दीदी की उम्मीद पर देव खरे उतरे और यहां से वह चुनाव जीत गए हैं. ■

प्रकाश झा

राजनीतिक और सामाजिक मुद्दे पर गंगाजल, अपहरण, राजनीति, चक्रव्यूह, आरक्षण और सत्याग्रह जैसी फिल्में बना चुके फिल्म निर्देशक प्रकाश झा को जनता दल (यूनाइटेड) ने पश्चिमी चंपारण से लोकसभा का टिकट दिया था. प्रकाश झा ने लोक जनशक्ति पार्टी की टिकट पर बेतिया सीट से 2009 के लोकसभा चुनाव में भाग्य आजमाया था, लेकिन उन्हें हार का मुंह देखना पड़ा था. इस बार यहां से भारतीय जनता पार्टी के डॉक्टर संजय जायसवाल विजयी रहे, जबकि प्रकाश झा यहां से दूसरे नंबर पर रहे.■

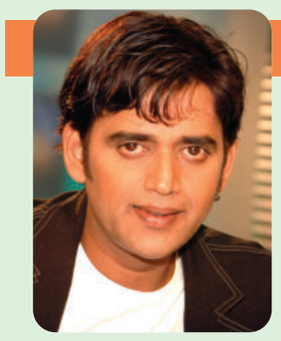

रवि किशन

भोजपुरी फिल्मों के अमिताभ बच्चन कहे जाने वाले रवि किशन की जौनपुर में लोकप्रियता को देखते हुए कांग्रेस ने उन्हें उनके क्षेत्र से टिकट दिया. चूंकि भोजपुरी बेल्ट में रवि किशन बहुत लोकप्रिय हैं, ऐसे में कांग्रेस को उम्मीद थी कि रवि किशन इस सीट पर जीत दर्ज करेंगे. लेकिन रवि किशन यहां नरेंद्र मोदी की लहर में बह गए. जौनपुर लोकसभा सीट पर भारतीय जनता पार्टी के प्रत्याशी कृष्ण प्रताप को विजह हासिल हुई. रवि किशन 6ठें नंबर पर रहे.■

परेश रावल

हिंदी फिल्मों के जाने-माने अभिनेता परेश रावल को भारतीय जनता पार्टी ने गुजरात के अहमदाबाद ईस्ट से अपना प्रत्याशी बनाया था. परेश रावल यहां से चुनाव जीत गए हैं.■

जया प्रदा

आरएलडी की टिकट पर जया प्रदा ने बिजनौर से चुनाव लड़ा था. उन्हें यहां से हार का सामना करना पड़ा. पिछली बार जयाप्रदा रामपुर सीट से निर्वाचित हुई थीं. इस बार उनके बिजनौर से चुनाव लड़ने के यहां की राजनीति में ग्लैमर जरूर आ गया था. उन्हें बाहरी होने का दंश भी झेलना पड़ा. उनके प्रतिद्वंद्वी भारतीय जनता पार्टी के प्रत्याशी कुंवर भारतेंद्र चुनाव जीत गए हैं. जयाप्रदा यहां चौथे स्थान पर रहीं. ■

जावेद जाफरी

आम आदमी पार्टी ने बॉलीवुड एक्टर जावेद जाफरी को लखनऊ लोकसभा सीट से अपना उम्मीदवार बनाया था. जावेद जाफरी बेहतरीन डांसर और कॉमेडियन हैं. लखनऊ सीट पर बीजेपी के राष्ट्रीय अध्यक्ष राजनाथ सिंह उनके प्रतिद्वंद्वी थे. जावेद जाफरी यहां से चुनाव हार गए. भारतीय जनता पार्टी के राजनाथ सिंह यहां से चुनाव जीत गए, जबकि कांग्रेस की रीता बहुगुणा जोशी यहां से दूसरे नंबर पर रहीं. ■

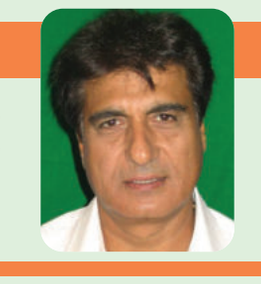

राज बब्बर

अभिनेता राज बब्बर कांग्रेस से फिरोजाबाद के एमपी थे. पिछले चुनाव में उन्होंने यहां से समाजवादी पार्टी प्रमुख की बहु डिंपल यादव को पराजित किया था. इस बार वह ग़ाजियाबाद सीट से चुनाव मैदान में थे. उन्हें इस बार हार का समना करना पड़ा है. उन्हें भाजपा के जनरल वी के सिंह ने 5.67 लाख मतों के अंतर से मात दी.

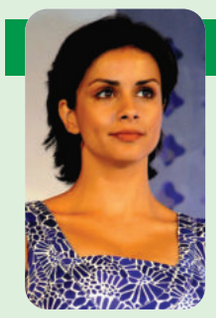

गुल पनाग और किरण खेर

भ्रष्टाचार को मुद्दा बना कर लड़ने वाली आम आदमी पार्टी ने चंडीगढ़ से अभिनेत्री गुल पनाग को उम्मीदवार बनाया था. उनके अपोजिट यहां से भाजपा की उम्मीदवार अभिनेत्री किरण खेर थीं. नई-नई राजनेता बनीं गुल पनाग ने अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए बहुत मेहनत की. मिस इंडिया रह चुकीं 35 वर्षीय गुल लोगों से मिलने के लिए सुबह 5 बजे उठकर अपने दिन की शुरुआत करती थीं. गुल पनाग एक अच्छी वक्ता होने के अलावा स्पोर्ट्स पर्सन और समाज सेविका भी हैं. उनकी मेहनत को देखते हुए माना जा रहा था कि वह यहां से जरूर जितेंगी. कांग्रेस ने यहां से पवन कुमार बंसल को टिकट दिया था. पवन कुमार बंसल यहां से 4 बार सांसद रह चुके हैं, जबकि बसपा ने यहां से जन्नत जहां को उम्मीदवार बनाया था. भाजपा की टिकट पर चुनाव लड़ने के कारण किरण को फायदा हुआ और वह यहां से विजयी रहीं. दूसरे नंबर पर यहां से कांग्रेस के पवन कुमार बंसल हैं और आम आदमी पार्टी से गुल पनाग तीसरे नंबर पर हैं.■

राम्या

दक्षिण भारत की मशहूर अभिनेत्री और कर्नाटक के मांड्या संसदीय क्षेत्र से वर्तमान सांसद राम्या चुनाव हार गई हैं. राम्या इस बार भी मांड्या सीट पर चुनाव लड़ीं. राम्या अपोजिट थे जेडी (एस) के उम्मीदवार सीएस पुत्ताराजू. इससे पहले मांड्या सीट पर हुए उप चुनाव में राम्या ने पुत्ताराजू को 47,622 वोटों से मात दी थीं.■

हेमा मालिनी

ड्रीमगर्ल हेमा मालिनी डायरेक्टर, प्रोड्यूसर, क्लासिकल डांसर और कोरियोग्राफर भी हैं. उन्होंने 2004 में भारतीय जनता पार्टी ज्वाइन की थी. वह पार्टी की कर्मठ सदस्य हैं. मार्च 2010 में वह पार्टी की जनरल सेक्रेटरी चुनी गईं. भाजपा ने उन्हें उत्तर प्रदेश की मथुरा सीट पर प्रत्याशी बनाया था. उन्होंने यहां आरएलडी के जयंत चौधरी को मात दी.■

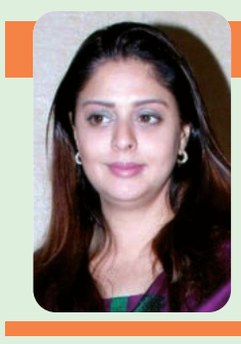

नगमा

नगमा को कांग्रेस ने मेरठ सीट से उम्मीदवार बनाया था. नगमा ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत वर्ष 2003 में की थी और उन्हें एक बार राज्य सभा सदस्य के लिए भी चुना गया था. नगमा ने अपने फिल्मी करियर की शुरुआत सलमान खान के साथ फिल्म बागी से की थी. नगमा भोजपुरी और दक्षिण भारतीय सिनेमा में भी लोकप्रिय हैं. पर वह अपनी लोकप्रियता को यहां भुना नहीं पाईं, वह चुनाव हार गईं. भारतीय जनता पार्टी के राजेंद्र अग्रवाल यहां से विजयी रहे, जबकि नगमा यहां चौथे पायदान पर रहीं.■

बाबुल सुप्रियो

भारतीय जनता पार्टी ने आसनसोल वेस्ट बंगाल से गायक और अभिनेता बाबुल सुप्रियो को उम्मीदवार बनाया था. बाबुल यहां से चुनाव जीत गए हैं.■

मोहम्मद अजहरुद्दीन

भारतीय क्रिकेट टीम के पूर्व कप्तान मोहम्मद अजहरुद्दीन उत्तर प्रदेश की मुरादाबाद लोकसभा सीट से कांग्रेस के सांसद रहे हैं. इस बार उनको कांग्रेस ने राजस्थान के सवाई माधोपुर लोकसभा सीट से चुनाव मैदान में उतारा था. अजहरुद्दीन यहां से चुनाव हार गए हैं. उन्हें भाजपा के प्रत्याशी सुखबीर सिंह जौनपुरिया मात दी. अजहरुद्दीन दूसरे नंबर पर रहे. दरअसल बाहरी होने के कारण उन्हें यहां समर्थन नहीं मिला, हालांकि अजहरुद्दीन का मानना था कि वह भारतीय हैं और कहीं से भी चुनाव लड़ सकते हैं.■

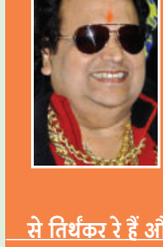

बप्पी लाहिड़ी

बप्पी लाहिड़ी जाने माने संगीत निर्देशक और गायक हैं. उनकी लोकप्रियता को देखते हुए भारतीय जनता पार्टी ने उन्हें कोलकाता के हुगली जिले के श्री रामपुर से उम्मीदवार बनाया था. यहां तृणमूल कांग्रेस से कल्यान बनर्जी जीत गए हैं, जबकि दूसरे नंबर पर कम्यूनिष्ट पार्टी से तिर्थंकर रे हैं और तीसरे नंबर पर बप्पी लाहिड़ी हैं.■

मोहम्मद कैफ

क्रिकेट में असफलता के बाद मोहम्मद कैफ ने राजनीति में भाग्य आजमाया. कैफ ने आखिरी अंतरराष्ट्रीय मैच दक्षिण अफ्रीका के खिलाफ 2006 में खेला था. कैफ लंबे समय से टीम इंडिया से बाहर चल रहे हैं. कैफ को कांग्रेस ने उत्तर प्रदेश की फूलपूर लोकसभा सीट पर अपना उमीदवार बनाया था. यहां भारतीय जनता पार्टी के प्रत्याशी केशव प्रसाद मौर्या ने बाजी मार ली. जबकि समाजवादी पार्टी के प्रत्याशी धर्म राज सिंह पटेल यहां दूसरे पायदान पर रहे. तीसरे नंबर पर बहुजन समाज पार्टी के कपिल मुनि करवरिया रहे. स्टार पॉवर के होने के बावजूद मोहम्मद कैफ चौथे स्थान पर रहे. ■

मनोज तिवारी

भोजपुरी गायक और अभिनेता मनोज तिवारी बिहार और उत्तर प्रदेश में काफी लोकप्रिय हैं. उनकी लोकप्रियता को देखते हुए भाजपा ने उन्हें दिल्ली की नार्थ-ईस्ट लोकसभा सीट से उम्मीदवार बनाया था, मनोज तिवारी यहां से चुनाव जीत गए हैं. इससे पहले मनोज तिवारी समाजवादी पार्टी के टिकट से गोरखपुर से चुनाव लड़ चुके हैं.■

बाइचुंग भूटिया और प्रसून बनर्जी

बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने भी खिलाड़ियों की ताकत को पहचाना और भारतीय फुटबाल टीम के पूर्व कप्तान बाइचुंग भूटिया और प्रसून बनर्जी को दीदी ने टिकट दिया. बाइचुंग भूटिया दार्जिलिंग लोकसभा सीट से चुनाव लड़े. भूटिया को यहां हार का सामना करना पड़ा. भारतीय जनता पार्टी के एसएस अहलूवालिया ने उन्हें पराजित किया. दीदी ने फुटबॉल के लोकप्रिय खिलाड़ी रहे प्रसून बनर्जी को हावड़ा सीट से टिकट दिया. प्रसून पश्चिम बंगाल के सबसे बड़े फुटबॉल क्लब मोहन बागान के कप्तान भी रहे हैं और तृणमूल कांग्रेस की खेल शाखा के अध्यक्ष भी रह चुके हैं. तृणमूल सांसद अंबिका बनर्जी के निधन से खाली हुई सीट पर उन्होंने चुनाव लड़ा था. दीदी को प्रसून की लोकप्रियता पर पूरा-पूरा भरोसा था और प्रसून ने भी दीदी को निराश नहीं किया. हावड़ा सीट से उन्होंने बड़े अंतर से जीत दर्ज की.■

राखी सावंत, महेश मांजरेकर और कमाल आर ख़ान

अभिनेता और फिल्म निर्माता महेश मांजरेकर ने ने महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के टिकट पर मुंबई की नॉर्थ-वेस्ट सीट से चुनाव लड़ा. उनके अपोजिट कांग्रेस से गुरुदास कामत थे, गुरुदास कामत कांग्रेस के यूनियन मिनिस्टर और जनरल सेक्रेटरी भी रह चुके हैं, जबकि शिवसेना ने गजानन किर्तिकर को अपना उमीदवार बनाया था. .वहीं प्रोड्यूसर एक्टर कमाल आर खान भी इस क्षेत्र से समाजवादी पार्टी के उम्मीदवार थे, जबकि आम आदमी पार्टी ने यहां से मयंक गांधी को उम्मीदवार बनाया था. आइटम गर्ल राखी सावंत भी यहां से नई राजनीतिक पार्टी राष्ट्रीय आम पार्टी बनाकर चुनाव लड़ा था, पर राखी हार गईं. इस सीट पर शिवसेना के गजानन चंद्रकांत किर्तिकर को जीत हासिल हुई. महेश मंजरेकर यहां तीसरे नंबर पर रहे. ■

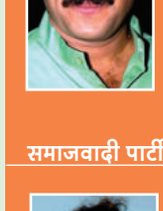

शत्रुघ्न सिन्हा

शत्रुघ्न सिन्हा बिहार की पटना साहिब सीट पर भारतीय जनता पार्टी के उम्मीदवार थे. वह यहां से सांसद भी थे. वह केंद्रीय मंत्री और साथ ही तीन बार राज्य सभा सदस्य भी रह चुके हैं. शत्रुघ्न सिन्हा यहां से चुनाव जीत गए हैं. ■

स्मृति ईरानी

अमेठी लोकसभा सीट पर कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी को चुनौती देने के लिए भारतीय जनता पार्टी ने स्मृति ईरानी को टिकट दिया. स्मृति ने यहां से नामांकन दाखिल करते समय कहा था कि उनका मुकाबला सीधे राहुल गांधी से है, आम आदमी पार्टी से नहीं. इस बार अमेठी इतिहास रचेगा, क्योंकि इस बार राहुल को यहां से पराजय का सामना करना पड़ेगा. उन्हें सपोर्ट करने के लिए नरेंद्र मोदी भी अमेठी गए और उन्होंने कहा की इस क्षेत्र के विकास के लिए उन्होंने अपनी छोटी बहन स्मृति को यहां भेजा है. पर कांग्रेस के गढ़ में स्मृति और मोदी दोनों का जादू नहीं चला. राहुल गांधी यहां से जीत गए और स्मृति को पराजय का सामना करना पड़ा. स्मृति यहां से दूसरे नंबर पर रहीं.■

पत्रकार, जो पार्टियों के सहयोगी बन गए

पत्रकारों का दिन-प्रतिदिन राजनीति की तरफ झुकाव बढ़ता ही जा रहा है. इसी महात्वाकांक्षा के कारण पत्रकार अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाहन नहीं कर रहे हैं. इंडियन एक्सप्रेस के पूर्व संपादक अरुण शौरी, पायनियर के मुख्य संपादक चंदन मित्रा, प्रभात खबर के संपादक हरिवंश सिंह ये ऐसे पत्रकार हैं जो राजनीतिक पार्टियों के टिकट पर राज्यसभा में पहुंचे हैं. ताजा मामला आईबीएन-7 के पूर्व मैनेजिंग एडिटर आशुतोष का है, इन्होंने दिल्ली विधानसभा के दौरान आम आदमी पार्टी का अपने चैनल के माध्यम से प्रचार किया और विधान सभा चुनाव के खत्म होते ही इस्तीफा देकर आप की सदस्यता ग्रहण कर ली. इसके बाद पार्टी ने उन्हें चांदनी चौक लोकसभा सीट से अपना प्रत्याशी बनाकर चुनाव मैदान में उतारा, लेकिन वह चुनाव हार गए. इससे यह जाहिर होता है कि यह पत्रकारिता का राजनीतिक युग है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

पत्रकार हो या कोई और सबकी अपनी-अपनी विचारधार होती है और वह अपनी पसंद के अनुसार विधानसभा चुनाव हो या लोकसभा चुनाव में वोट करता है. चुनाव में वह अपने पसंदीदा उम्मीदवार को वोट देता है जो उसका अधिकार है और वो किसी भी पार्टी का हो सकता है. चुनाव आते ही पार्टी के कार्यकर्ता, समर्थक अपनी पसंदीदा पार्टी के प्रचार-प्रसार में लग जाते हैं, लेकिन जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे प्रोफेशनल कार्य और खासतौर से पत्रकारिता से जुड़ा है और उसके विचारों से समाज पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है, तो उसे ऐसा करने से बचना चाहिए. वो अपने व्यक्तिगत हैसियत में कुछ भी करे तो कोई एतराज नहीं. मगर जब भी वो कलम पकड़े या कैमरे के सामने आए तो उसे एक न्यायाधीश की तरह व्यवहार करना चाहिए. पत्रकार किसी न किसी पार्टी का सपोर्ट करते हैं और वह अप्रत्यक्ष रूप से पिछले भी कई चुनावों में किए हैं, लेकिन 2014 के आम चुनाव में अधिकतर जाने-माने पत्रकार नई नवेली आम आदमी पार्टी का अप्रत्यक्ष रूप से प्रचार कर रह थे, कई पत्रकार तो भाजपा और कांग्रेस के समर्थन में माहौल बनाते देखे गए वहीं कुछ मोदी के विरोध में शंका पैदा करते नजर आए.

पहले बात करते हैं आज तक की. आज तक के दो सबसे बड़े पत्रकार और एंकर सीधे तौर पर आप के प्रचार-प्रसार में लगे दिखाई दिए. चैनल की प्राइम टाइम एकंर अंजना ओम कश्यप और पुण्य प्रसून वाजपेयी तो अप्रत्यक्ष रूप से आप के समर्थन में थे. अंजना ओम कश्यप के इसी रुख के कारण बीएचयू के छात्रों ने तो क्रोधित होकर छत से उनके ऊपर कूड़ा फेंक दिया. अंजना पर एक बार भाजपा प्रवक्ता और नई दिल्ली सीट से जीत हासिल करने वाली मीनाक्षी लेखी ने आप नेता शाजिया इल्मी के साथ उनके नजदीकियों को लेकर कटाक्ष भी किया था, जिसका वह जवाब नहीं दे पाई.

एनडीटीवी इंडिया के प्राईम टाईम एकंर रविश कुमार खुले तौर पर आप के पक्ष के प्रचार कर रहे थे. रविश अपने कार्यक्रम के जरिए देश के लोगों को भ्रमित करने का काम कर रहे थे. ये अपने पूरे कार्यक्रम में केवल अन्य पार्टियों की कमियों को गिनाते और उसी के बारे में पूछते देखे जाते थे. आम आदमी पार्टी के बारे में गांव-गांव घूमकर लोगों में उसका प्रचार-प्रसार करने में लगे थे. अंग्रेजी चैनल एनडीटीवी की समूह संपादक बरखा दत्त खुलेआम कांग्रेस का समर्थन करती नजर आई.

जी न्यूज चैनल के मुख्य संपादक सुधीर चौधरी पर भी मोदी के समर्थक होने के आरोप लगे. सीएसडीएस के मुख्य संपादक अभय दुबे आप के समर्थन में थे और वे न्यूज चैनलों पर आम आदमी पार्टी का बचाव करते ही नजर आए. अभय दुबे चुनाव परिणाम आने के बाद आप की चुनावों में बुरी हार को भी जीत बताने में लगे थे.

जनसत्ता समाचार पत्र के संपादक ओम थानवी के मन में आम आदमी पार्टी को लेकर ज्यादा मोह था जो सोशल साईट से लेकर न्यूज चैनल तक चर्चा में नजर आया. मोह में वो यहां तक बढ़ गए कि उनके अखबार में जब अरविंद केजरीवाल को 'युग पुरुष' के रूप में प्रस्तु किया गया तो उन्होंने अनदेखा कर दिया. वरिख़ पत्रकार एवं एबीपी न्यूज में कार्यरत दिबांग भी मोदी विरोधियों में शामिल हैं. आम आदमी पार्टी बनने के बाद ये उसके प्रचार प्रसार में लगे रहे. दिबांग अक्सर चैनल और ग्राऊंड रिपोर्टिंग के दौरान भाजपा और मोदी के खिलाफ नकारात्मक रिर्पोटिंग कर रहे थे. सवाल यह यहां उठता है कि दिवांग जैसा पत्रकार बनारस के लोगों की मानसिकता क्यों नहीं समझ पाया. एबीपी न्यूज के बड़ी बहस कार्यक्रम में चर्चा के दौरान भाजपा के प्रवक्ता सुधांशू त्रिवेदी ने उनको यहां तक कह दिया कि सुना है आप भी आम आदमी पार्टी ज्वाइन करने वाले हैं.

इंडिया टीवी के चीफ-इन-इडिटर रजत शर्मा का झुकाव भाजपा और उसके पीएम पद के उम्मीदवार नरेंद्र मोदी की तरफ था. रजत शर्मा पर इसके आरोप भी लगे. जी न्यूज चैनल के मुख्य संपादक सुधीर चौधरी पर भी मोदी के समर्थक होने के आरोप लगे. सीएसडीएस के मुख्य संपादक अभय दुबे आप के समर्थन में थे और वे न्यूज चैनलों पर आम आदमी पार्टी का बचाव करते ही नजर आए. अभय दुबे चुनाव परिणाम आने के बाद आप की चुनावों में बुरी हार को भी जीत बताने में लगे थे. पत्रकार हमेशा निष्पक्ष होता है वह सबकी बातों, कार्यों को जनता के सामने रखता है और जनता उसके कार्यों, विचारों को देखकर फैसला करती है कि उसे किसे वोट करना है. पत्रकार यह तय नहीं करता कि कौन पार्टी अच्छी है कौन नहीं. कौन प्रधानमंत्री बनेगा यह जनता करती है.पर यह नई पत्रकारिता है जो उस पत्रकारिता से अलग है जिसका सारा देश सम्मान करता है. ■

feedback@chauthiduniya.com

सोशल मीडिया का राजनीतिक दखल

नवीन चौहान

16 वीं लोकसभा के चुनाव को यदि तकनीक का चुनाव कहा जाए तो यह कतई ग़लत नहीं होगा. चुनाव प्रचार से लेकर मतदान और मतगणना तक सब कुछ नई तकनीक पर आधारित था. तकनीक के सफल उपयोग के लिए इन चुनावों को हमेशा याद किया जाएगा. यह चुनाव कई मायनों में पिछले चुनावों से अलग था. इन चुनावों को एक अलग रंग देने में फेसबुक और ट्विटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने महत्वपूर्ण और आंशिक रूप से निर्णायक भूमिका अदा की है. अप्रत्याशित रूप से इस चुनाव का एक सिरा परंपरागत डोर टू डोर कैंपेने शैली पर तो दूसरा उस स्तंभ पर टिका था, जिसे सोशल नेटवर्किंग या नया मीडिया कहा जाता है. फेसबुक और ट्विटर का आविष्कार करने वालों ने यह सपने में भी नहीं सोचा होगा कि उनकी खोज दुनिया भर में लोकतंत्र के महापर्व का एक प्रमुख अंग बन जाएगी. जहां हर किसी को स्वच्छंद विचार रखने की आज़ादी होगी.

पिछले कुछ दशकों में यह देखा गया था कि देश का आम नागरिक और युवाओं की राजनीतिक भागीदारी कम हुई थी. यह तबका राजनीतिक गलियारों में होने वाले विचार विमर्श में अपने विचार बहुत कम या कहें न के बराबर रखता था. गावों और कस्बों का राजनीतिक परिदृश्य बदल गया था. वहां के नुक्कड़ों और चाय की दुकानों में होने वाली राजनीतिक परिचर्चाओं में भाग लेने वालों की संख्या में भारी कमी आई थी. लेकिन समय बदला और सूचना क्रांति ने इस तस्वीर को पूरी तरह बदल दिया. लैपटॉप और मोबाइल के रूप में युवाओं के हाथ ऐसा हथियार आ गया था, जिसमें राजनीतिक समीकरणों को बदलने की ताकत थी. सोशल मीडिया युवाओं को अनायास ही राजनीतिक परिचर्चा की मुख्यधारा में ले आया और डेमोक्रेटिक डेफिसिट की भरपाई कर दी. सोशल मीडिया ने नेता और जनता के बीच को एक नए सिरे से परिभाषित किया है.

सोशल मीडिया की ताकत के बारे में दुनिया ने अरब अपराइजिंग से जाना था. भारतीय राजनीति का सोशल मीडिया की ताकत से परिचय वर्ष 2011 में अन्ना हजारे के लोकपाल आंदोलन ने करवाया था. दिल्ली में हो रहे इस आंदोलन की लपटें देखते ही देखते पूरे देश में फैल गईं. टीवी पर आंदोलन की पल-पल की ख़बर लेकर हर कोई सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर लोगों से इस आंदोलन में भाग लेने की अपील कर रहा था. असर ऐसा हुआ कि देश के कोने-कोने में लोग सरकार के विरोध और अन्ना के समर्थन में खड़े दिखाई दिए. स्थानीय स्तर पर हो रहे प्रदर्शन की राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा हो रही थी. इसके बाद तो बड़ी संख्या में राजनेताओं की सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर उपस्थिति दर्ज़ कराने की होड़-सी मच गई. इसके बाद आम आदमी पार्टी का गठन हुआ और युवा एक बार फिर से राजनीति और राजनीतिक परिचर्चा की मुख्यधारा में लौट आया. राजनीतिक और वैचारिक लड़ाई फेसबुक वाल पर लड़ी जाने लगी. 2009 में हुए लोकसभा चुनावों के दौरान देश के केवल एक राजनेता कांग्रेस के शशि थरूर के ट्विटर पर 6000 से अधिक फॉलोअर थे. अधिकांश नेता खासकर युवा लोगों से सीधा संवाद करते नज़र आने लगे. चुनावी मौसम के आने के बहुत पहले ही सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर प्रधानमंत्री पद के दावेदारों की लड़ाई शुरू हो गई थी.

वर्तमान में भारत में 10 करोड़ फेसबुक यूजर हैं, जिसमें से 7.3 करोड़ ऐसे यूजर हैं जो फेसबुक पर एक्टिव रहते हैं. 16 वीं लोकसभा के लिए हुए आम चुनावों में मतदान करने के लिए 81 करोड़ मतदाता तैयार थे. उम्मीदवारों के सामने सबसे बड़ी चुनौती इन 81 करोड़ मतदाताओं तक पहुंचना था. सोशल नेटवर्किंग पर प्रचार का मुख्य लक्ष्य युवा वर्ग था. उनमें भी वह युवा जो कि पहली बार मतदान करने जा रहा था. इस बार लोकसभा चुनावों में पहली बार मतदान कर रहे युवाओं की संख्या लगभग 12 करोड़ थी, अप्रत्यक्ष तौर पर उन्हीं के हाथों में सत्ता की चाभी थी. यही वर्ग देश का सबसे ज्यादा पढ़ा लिखा वर्ग है. यही वर्ग देश को आगे ले जाना चाहता है.

राजनीतिक दलों के लिए इन युवाओं को अपने पाले में ले आना आसान काम नहीं था. तार्किक आधार पर ही उन्हें अपने पाले में खींचा जा सकता है. इसके लिए बड़े दलों ने कमर कस ली थी. आज का शहरी वोटर पहले की अपेक्षा राजनीति और सुशासन को लेकर ज्यादा गंभीर दिखाई पड़ता है. इसलिए नवोदित आम आदमी पार्टी और भारतीय जनता पार्टी ने सबसे पहले सोशल नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म को गंभीरता से लिया और इसे चुनावी अखाड़ा बना दिया. कांग्रेस, सपा, बसपा और कम्युनिस्ट पार्टियां इस लड़ाई में पिछड़ती दिखीं. सोशल मीडिया की पहुंच देश के गांवों में भी है भले ही इसका उपयोग करने वालों की संख्या वहां कम हो. सपा, बसपा जैसे स्थापित राजनीतिक दल अपना परंपरागत वोट हासिल करने में सफल रहे, लेकिन जो युवा सोशल नेटवर्क पर बहस करता दिखता है उन तक अपनी बात पहुंचाने में असफल रहे. इस बात से कोई भी दल अनभिज्ञ नहीं था कि इस बार युवाओं के वोट ही देश की दिशा को निर्धारित करेंगे. परिणाम आए तो ऐसा ही हुआ उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी 22 प्रतिशत वोट पाने के बावजूद केवल पांच और बसपा 19 प्रतिशत वोट पाने के बाद एक भी सीट हासिल नहीं कर पाई. सोशल मीडिया पर इन दोनों पार्टियों की उपस्थिति न के बराबर ही थी शायद इसीलिए उन्हें युवाओं का वोट हासिल नहीं हो पाया. भाजपा ने सोशल नेटवर्किंग में अथाह उपस्थिति दर्ज़ की और 73 सीटों पर अपना परचम लहराया. लेकिन लोकसभा चुनाव आम आदमी पार्टी के संदर्भ में यह बात ग़लत साबित हुई है. दिल्ली विधानसभा चुनावों में आम आदमी पार्टी के पक्ष में माहौल बनाने में सोशल मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी.

सोशल मीडिया की ताकत के बारे में दुनिया ने अरब अपराइजिंग से जाना था. भारतीय राजनीति का सोशल मीडिया की ताकत से परिचय वर्ष 2011 में अन्ना हजारे के लोकपाल आंदोलन ने करवाया था. दिल्ली में हो रहे इस आंदोलन की लपटें देखते ही देखते पूरे देश में फैल गईं. टीवी पर आंदोलन की पल पल की खबर लेकर हर कोई सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर लोगों से इस आंदोलन में भाग लेने की अपील कर रहा था.

16 वीं लोकसभा के लिए हुए चुनाव में सभी पार्टियों ने सोशल नेटवर्किंग पर कुल मिलाकर 400-500 करोड़ रुपये खर्च किए हैं, जो कि कुल चुनावी खर्च का लगभग 10 प्रतिशत है. लोकसभा चुनावों में इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग का खर्च उस स्तर तक पहुंच गया था कि चुनाव आयोग ने किसी भी वेबसाइट या सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर चुनावी विज्ञापन लगाने से पहले अनुमति लेना अनिवार्य कर दिया था. इन चुनावों में सोशल मीडिया ने मोदी लहर बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की. सोशल मीडिया की लोकप्रियता में दिनों दिन हो रहा इज़ाफा यह बताता है कि आने वाले समय में चुनाव प्रचार का यह एक प्रमुख हथियार साबित होगा. सोशल मीडिया के कारण अनावश्यक चुनाव प्रचार में होने वाले खर्च में भी कमी आएगी, जो कि सीधे तौर पर जनता के हित में होगा. फिलहाल देश की लगभग दस प्रतिशत आबादी सोशल मीडिया की पहुंच में है. ऐसे में इस प्रचार माध्यम पर ज़रूरत से ज्यादा किया जाने वाले खर्च का कोई औचित्य नहीं है. हालांकि सोशल मीडिया ने परंपरा से हटकर जनता और जनप्रतिनिधियों के बीच सीधा संपर्क बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है. अभी साफ तौर पर यह कहना जल्दबाजी होगी कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर काम करने वाले ओपीनियन मेकर होते हैं. सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर चलाए जाने वाले वोटर्स अवेयरनेस कैंपेन ने मतदान प्रतिशत को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है. 2009 की तुलना में इस बार 10 प्रतिशत से ज्यादा बढ़ोतरी हुई है.

फिलहाल सोशल नेटवर्किंग साइट्स के अंतर्गत किया जाने वाला प्रचार आदर्श आचार संहिता के अंतर्गत नहीं आता है. इसलिए सोशल नेटवर्किंग की चुनावी पटकथा की असली हीरो पब्लिक रिलेशन एजेंसी हैं. जो तमाम राजनीतिक दलों के प्रचार की कमान संभाल रही हैं. स्वयं में सोशल मीडिया अभी इतना ताकतवर नहीं हुआ है कि वहां की लोकप्रियता को वोटों में तब्दील किया जा सके. सोशल मीडिया को कंट्रोवर्सीज क्रिएट करने में महारथ हासिल है. कोई विवादास्पद विषय यदि सोशल नेटवर्किंग साइट्स में आता है और एक बार कमेंट और शेयरिंग-पैटर्न में तेज़ी आती है तब इसे एक बड़े रूप में टीवी और समाचारपत्रों में जगह मिल जाती है. यहां लोग लकीर के फकीर भी हैं जो मेरी मुर्गी की एक टांग का राग अलापते रहते हैं. ऐसे में एक चुनावी परिचर्चा की गंभीरता कम हो जाती है. इस तरह की चुनौतियों से उबरकर ही सोशल नेटवर्किंग एक बेहतरीन चुनावी मंच साबित होगा. ■

feedback@chauthiduniya.com

पूर्वोत्तर में भी पहुंची मोदी लहर

16वीं लोकसभा चुनाव का परिणाम सामने है. इस चुनाव में भाजपा को अप्रत्याशित परिणाम मिला. पूरे देश में मोदी की लहर का असर हुआ. पूर्वोत्तर में भी. यहां के सबसे बड़े राज्य असम में पार्टी को काफी हद तक सफलता मिली वहीं पूरे पूर्वोत्तर में पार्टी ने अपने सहयोगियों के साथ बेहतरीन जीत हासिल की. चुनाव अभियान के दौरान नरेंद्र मोदी ने पूर्वोत्तर में कई वायदे किए. अरुणाचल और त्रिपुरा की धरती पर मोदी ने चीन और बांग्लादेश को चुनौती दी. इंफाल में आईटी हब खोलने की बात की. मोदी के इन वायदों का असर पूर्वोत्तर के लोगों पर हुआ.

एस. बिजेन सिंह

16 मई के नतीजे ने यह स्पष्ट कर दिया कि न सिर्फ उत्तर भारत, बल्कि पूर्वोत्तर में भी मोदी लहर देखी गई. पूर्वोत्तर के 8 राज्यों में लोकसभा की कुल 25 सीटें हैं. इनमें भाजपा की अगुवाई वाली एनडीए गठबंधन ने 10 सीटें हासिल की. गौरतलब है कि 2009 के लोकसभा के चुनाव में भाजपा के पास असम के 14 सीटों में 4 सीटें ही थीं. इसके अलावा पूर्वोत्तर के बाकी सात राज्यों में भाजपा शून्य पर थी. इस बार यह स्थिति पूरी तरह बदली है. इस बार असम में सात, नगालैंड में 1, मेघालय में 1 और अरुणाचल प्रदेश में 1 सीट जीतने में एनडीए सफल रहा है. अगर 2009 के नतीजे से तुलना करें, तो इस बार एनडीए की सफलता पिछली बार से ढाई गुना अधिक है.

पूर्वोत्तर में मोदी लहर के पहुंचने की बड़ी वजह यह है कि पहली बार किसी प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार ने अपनी रैलियों में पुर्वोत्तर के लोगों की समस्याओं के बारे में बात की. नरेंद्र मोदी ने अपने प्रचार अभियान के दौरान कुल सात बार पूर्वोत्तर में रैली की और उनकी रैलियों में जनता काफी बड़ी संख्या में जुटी. यह इस बात का संकेत था कि पूर्वोत्तर के लोगों का झुकाव मोदी, उनके भाषणों और वादों के प्रति हो रहा है. अभी तक तमाम दलों के बड़े नेताओं के एजेंडे में पूर्वोत्तर महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता था. इसकी वजह यह है कि कांग्रेस हमेशा से यहां से जीतती आई है और वह इन क्षेत्रों की सीटों के प्रति हमेशा आश्वस्त रहती थी. नरेंद्र मोदी ने कांग्रेस और वामदलों के इस मिथक को तोड़ने की पूरी कोशिश की और वे इसमें काफी हद तक सफल भी रहे. मोदी लहर की एक मिसाल यह भी है कि पूर्वोत्तर में भाजपा को अपने लिए उम्मीदवार तक के लाले पड़ जाते थे, लेकिन इस बार मणिपुर में ही वहां के नेताओं में भाजपा की तरफ से चुनाव लड़ने की होड़ सी लग गई. यानी वहां के नेता से लेकर जनता तक इस बात से वाकिफ थे कि अगर मोदी किसी मुद्दे पर वादा कर रहे हैं, तो उसे पूरा भी करेंगे. उनके सामने बतौर मुख्यमंत्री गुजरात में मोदी द्वारा किए गए विकास कार्यों का उदाहरण था. दूसरी बात यह कि मोदी ने पूर्वोत्तर के लोगों के सम्मान की बात करके वहां की जनता का दिल जीत लिया. एक तरफ उन्होंने अरुणाचल में जाकर चीन को ललकारा, तो दूसरी तरफ त्रिपुरा में बंग्लादेशी घुसपैठ को लेकर कड़ा रुख अपनाने की बात कही. इसके अलावा पूर्वोत्तर के विकास का भी जिक्र मोदी ने अक्सर किया. चाहे वह इंफाल में आईटी हब बनाने की बात हो या पूरे पूर्वोत्तर के महिलाओं के रोजगार की बात. इन सभी मुद्दों ने पूर्वोत्तर में मोदी के पक्ष में एक माहौल बनाने का काम किया, जो हमें लोकसभा के नतीजों में दिखता है. अगर नतीजों की बात करें, तो यहां का परिणाम चौंकाने वाला रहा. हालांकि, अभी तक पुर्वोत्तर में कांग्रेस का ही कब्जा था. असम में 14 सीटें हैं. इनमें भाजपा को सात सीटें मिलीं. कांग्रेस को तीन सीट मिली. इस बार भी मणिपुर में दोनों सीटों पर, इनर और आउटर, में कांग्रेस का ही कब्जा रहा. इनर में एक लाख से अधिक वोटों से कांग्रेस ने जीत हासिल की. दूसरे नंबर पर सीपीआई और तीसरे नंबर पर भाजपा है. आउटर में पंद्रह हजार वोट से कांग्रेस ने नगा पीपुल्स फ्रंट को हराया. तीसरे नंबर पर भाजपा है. मिजोरम में एक सीट है. कांग्रेस ने 10 हजार वोट से निर्दलीय उम्मीदवार को हराया. तीसरे नंबर पर आम आदमी पार्टी आई. मिजोरम में तो भाजपा की बुरी स्थिति बनी. त्रिपुरा में, त्रिपुरा ईस्ट और वेस्ट, दोनों सीटों पर सीपीआई (एम) का ही कब्जा रहा है. त्रिपुरा ईस्ट में सीपीआई (एम) 4 लाख से अधिक वोटों से जीत हासिल की. दूसरे नंबर पर कांग्रेस, तीसरे नंबर पर तृणमूल कांग्रेस और चौथे पर भाजपा रही. त्रिपुरा वेस्ट में भी दूसरा और तीसरा स्थान कांग्रेस और तृणमूल कांग्रेस का रहा. मेघालय में दो सीट शिलांग और तूरा है. शिलांग में कांग्रेस ने एक लाख से अधिक वोट से जीत हासिल की. दूसरे और तीसरे पर निर्दलीय और यूनाइटेड डेमोक्रेटिक पार्टी है. तूरा में नेशनल पीपुल्स पार्टी 40 हजार वोट से जीत हासिल की और कांग्रेस दूसरे स्थान पर रही. अरुणाचल में दो सीट अरुणाचल ईस्ट और वेस्ट में कांग्रेस और भाजपा ने एक-एक पर जीत दर्ज की. अरुणाचल ईस्ट में कांग्रेस ने भाजपा को 13 हजार से हराया. तीसरे नंबर पर पीपुल्स पार्टी ऑफ अरुणाचल है. अरुणाचल वेस्ट में भाजपा 33 हजार वोट से जीती. दूसरे और तीसरे नंबर पर कांग्रेस और पीपुल्स पार्टी ऑफ अरुणाचल रहे. सिक्किम में एक सीट है. सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट यहां 44 हजार वोट से जीत हासिल किया है. दूसरे और तीसरे नंबर पर सिक्किम क्रांतिकारी मोर्चा और कांग्रेस है. नगालैंड में एक सीट है. राज्य में नगा पीपुल्स फ्रंट ने कांग्रेस को 4 लाख वोटों से हराया. यहां क्षेत्रीय पार्टी का ही हमेशा से बोल-बाला रहा है. इस बार भी नगा पीपुल्स फ्रंट आगे रहा. पार्टी का इस चुनाव में भाजपा से गठबंधन है.

आखिर, नरेंद्र मोदी पूर्ण बहुमत से जीते. अबकी बार भाजपा की सरकार आ रही है. पूरे देश के लोगों ने उनको चुना. अब बारी है नरेंद्र मोदी की. जनता का विश्वास कितना जीत पाते हैं. साथ में पूर्वोत्तर लोगों को कितना आकर्षित कर पाते है. देश के इस हिस्से में की गई चुनावी रैलियों के दौरान किए गए वायदों को पूरा कर पाने में अगर मोदी सफल रहे तो शायद यहां की जनता उन्हें पूरी तरह स्वीकार करने से परहेज नहीं करेगी. और उनका असफल रहना कांग्रेस का अस्तित्व बचाए रख सकता है.

आखिर, नरेंद्र मोदी पूर्ण बहुमत से जीते. अबकी बार मोदी की सरकार आ रही है. पूरे देश के लोगों ने उनको चुना. अब नरेंद्र मोदी की बारी है कि वह पूर्वोत्तर के लोगों की अकांक्षाओं पर कितना खरा उतर पाते हैं. देश के इस हिस्से में की गई चुनावी रैलियों के दौरान किए गए वायदों को पूरा कर पाने में अगर मोदी सफल रहे तो शायद यहां की जनता उन्हें पूरी तरह स्वीकार करने से परहेज नहीं करेगी. और उनका असफल रहना कांग्रेस का अस्तित्व बचाए रख सकता है. ■

feedback@chauthiduniya.com

दक्षिण में भी लहराया भगवा परचम

धर्मेन्द्र कुमार सिंह

कांग्रेस को पूरे देश में हार का सामना करना पड़ा. कांग्रेस का मजबूत गढ़ माना जाने वाले दक्षिण में भी उसको हार का सामना करना पड़ा. जहां कांग्रेस 2009 में दक्षिण के चार राज्यों में 60 सीटे जीती थी. वहीं इस बार कांग्रेस दक्षिण में केवल 19 सीटों पर ही सिमट कर रह गई. कांग्रेस ने सबसे ज्यादा आंध्रप्रदेश में 33 सीटे जीती थी वहां इस बार वह केवल दो ही सीटें जीत पाई. मोदी की लहर दक्षिण में भी दिखाई दी कमजोर संगठन के बावजूद भाजपा 21 सीटें जीतने में कामयाब रही.

भारतीय जनता पार्टी ने 2014 के लोकसभा चुनाव में कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक जीत हासिल की है. कोई ऐसा कोना नहीं बचा जहां पर कमल न खिला हो. पुरब से लेकर पश्चिम और उत्तर से लेकर दक्षिण तक हर जगह कमल खिला है. भारतीय जनता पार्टी ऐसी पार्टी है जिसने नरेंद्र मोदी की अगुवाई में 1984 के बाद सबसे बड़ी जीत हासिल की है और भाजपा देश में पहली बार पूर्ण बहुमत की सरकार बनाने वाली गैर कांग्रेसी पार्टी है. दक्षिण भारत में भाजपा कमजोर है और वहां पर उसके पास मजबूत संगठन भी नहीं है, लेकिन इसके बावजूद कर्नाटक में भाजपा की सरकार रह चुकी है. केरल को छोड़ दे तो दक्षिण के सभी राज्यों में कमल खिला है और यहां पर सबसे अधिक नुकसान कांग्रेस को हुआ है. दक्षिण के चार राज्यों कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, आंध्रप्रदेश में कांग्रेस ने 2009 लोकसभा चुनाव में 60 सीटें जीती थी जो इस बार केवल 19 पर सिमट कर रह गईं. वहीं भाजपा अपने सहयोगियों के साथ मजबूत हुई है और पहले उसके पास 19 सीटें थी अब 21 हो गई हैं. उसने आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु में भी सीटे जीती हैं. दक्षिण में कांग्रेस की अगुवाई वाली यूपीए सरकार ने आंध्रप्रदेश का बंटवारा जाते-जाते इसलिए किया था कि जिसका फायदा तेलंगाना में कांग्रेस को होगा, लेकिन कांग्रेस को सबसे बड़ा नुकसान हुआ जिसे केवल आंध्रप्रदेश में दो ही सीटें मिली. आंध्रप्रदेश के बंटवारे का फायदा केवल चन्द्रशेखर राव की पार्टी टीआरएस को मिला है जिसे 11 सीटें मिली है. लहर की बात करें तो शहरी इलाकों में को मोदी का लहर का ही नतीजा था कि वायएसआर कांग्रेस नेता जगन मोहन रेड्डी की मां विजयम्मा को भाजपा के कामभामपति हरि बाबु से हार मिली. सीमांध्रा में असली लड़ाई केवल एनडीए और वायएसआरसी के बीच थी. कांग्रेस से अलग होकर किरण रेड्डी ने अलग पार्टी बनाई थी उनकी पार्टी ने जगनमोहन को काफी नुकसान पहुंचाया है. इसी का नतीजा है कि भाजपा गठबंधन वहां पर 19 सीटें जीतने में कामयाब रहा. कर्नाटक में भाजपा को येद्दियुरप्पा के वापस आने से काफी फायदा मिला है. येद्दियुरप्पा के पार्टी से बाहर जाने कारण भाजपा को कर्नाटक विधानसभा में भारी नुकसान हुआ था और सत्ता गवानी पड़ी थी. कर्नाटक में कांग्रेस की सरकार है, लेकिन इसके बावजूद वहां पर कांग्रेस को केवल 9 सीटे मिली हैं. भाजपा के तमाम कोशिशों और नरेंद्र मोदी के लहर के बावजूद केरल में भाजपा का खाता नहीं खुला. हालांकि तिरवनंतपुरम में भाजपा के ओ राजगोपाल ने शुरूआत में शशि थरूर पर बढ़त बनाने के बावजूद अंत में वह उनसे 15 हजार मतों से हार गए, लेकिन वहां भाजपा का मत-प्रतिशत बढ़कर दो गुना हो गया है जो 2009 6 फीसदी था. मत-प्रतिशत बढ़कर इस चुनाव में 10 प्रतिशत हो गया है. केरल में भी कांग्रेस की सरकार के बावजूद यहां पर कांग्रेस को ज्यादा फायदा नहीं मिल पाया. तमिलनाडु की बात करें तो यहां पर कांग्रेस और डीएमके इन दोनों पार्टियों का यहां पर सुफड़ा साफ हो गया. यहां पर सबसे अधिक फायदा जयललिता की पार्टी एआईडीएमके को हुआ जिसको यहां 37 सीटें मिली हैं और दो सीटें भाजपा गठबंधन को मिली हैं. पहली बार कांग्रेस तमिलमाडु में साफ हो गई है. इसका कारण यह भी है कि वह इस बार अकेले चुनाव लड़ी थी और चिदंबरम के बेटे कीर्ति चिदंबरम भी अपनी सीट नहीं बचा पाए. टू-जी स्पेक्ट्रम घोटालों के कारण डीएमके का भी खाता तक नहीं खुला. यहां पर केवल एआईडीएमके एक विकल्प के तौर पर था और भाजपा का गठबंधन छोटी पार्टियों के साथ था. दस साल बाद भाजपा ने कन्याकुमारी सीट पर जीत हासिल की. जयललिता को 37 सीटें मिली हैं और वह देश में तीसरी शक्ति रूप में उभरी हैं, लेकिन इसके बावजूद केंद्र में उनकी कोई भूमिका नहीं होगी. ■

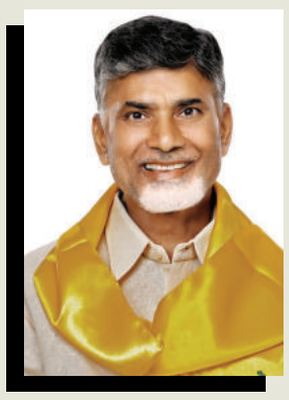

कर्नाटक
भाजपा-17
कांग्रेस-9
जेडी(एस)-2

आंध्रप्रदेश
टीडीपी-16
टीआरएस-11
वायएसआरसी-9
भाजपा-3
कांग्रेस-2
अन्य-1

केरल
कांग्रेस-8
आईएनडी-4
आईयूएमएल-2
आरएसपी-1
सीपीआई-1
केईसी(एम)

तमिलनाडु
आईडीएमके-37
पीएमके-1
भाजपा-1

2014 लोकसभा चुनाव में किन्नर (थर्ड जेंडर) उम्मीदवार

प्रत्याशी नाम	पार्टी	मत	स्थान
बसीर (कमला) किन्नर	निर्दलीय	2850	वाराणसी
सोनम किन्नर	निर्दलीय	1252	अमेठी
भारती कण्णम्मा	निर्दलीय	1232	मुदरै
बरखा किन्नर	निर्दलीय	4124	देवरिया

feedback@chauthiduniya.com

उत्तर भारत में भाजपा का परचम

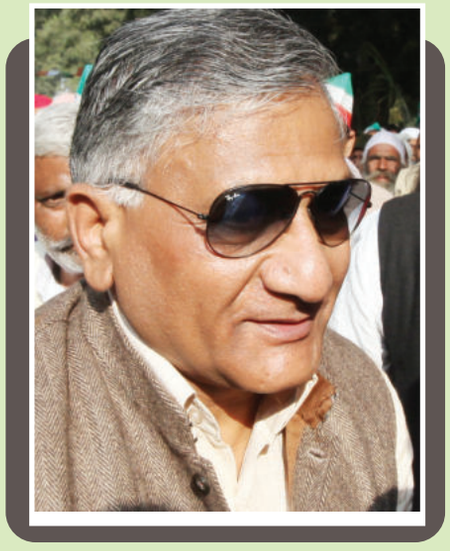

मायावती और मुलायम सिंह यादव जैसे कद्दावर नेताओं ने यूपी में जातिगत राजनीति में इस तरह से पैठ बनाई हुई थी कि कुछ विशेष जातियों से संबंधित वोटों पर इनका एकाधिकार समझा जाता था. चुनाव से पहले भी मीडिया में हो रही मोदी लहर की लाख चर्चाओं के बावजूद यह माना जा रहा था कि इस राज्य में भाजपा चालीस सीटों से ज्यादा शायद ही जीत पाए. लेकिन पूरे चुनाव प्रचार अभियान के दौरान मोदी के आकर्षण ने मतादाताओं को अपनी तरफ ऐसा खींचा की सारे मिथक टूटने में ज्यादा समय नहीं लगा. 16 मई को जैसे-जैसे नतीजे खुलते गए सत्ताधारी समाजवादी पार्टी और दलित मतों पर अपना एकाधिकार समझने वाली बहुजन समाज पार्टी के अरमान टूटते चले गए....

अरुण तिवारी

उत्तर भारत के तीन बड़े राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी ने इस चुनाव में अपना परचम लहराया है. इनमें मध्य प्रदेश में तो पार्टी की सफलता को लेकर लोग पहले से ही आश्वस्त थे लेकिन बिहार और यूपी में मिली सफलता ने पार्टी के नेताओं के चेहरे पर मुस्कान ला दी है. यूपी में तो भाजपा ने रिकॉर्ड 73 सीटों पर जीत हासिल की. नरेंद्र मोदी लहर में इन राज्यों की जनता ऐसी डूबी कि किसी दूसरी पार्टी के लिए करने के लिए कुछ खास बचा नहीं.

इस बार के चुनावी नतीजों में जिस प्रदेश ने सबसे ज्यादा हैरान किया है वह उत्तर प्रदेश. इस राज्य में जातिगत राजनीति को सबसे ज्याद क्लिष्ट माना जाता है. मायावती और मुलायम सिंह यादव जैसे कद्दावर नेताओं ने इस राज्य में जातिगत राजनीति में इस तरह से पैठ बनाई हुई थी कि कुछ विशेष जातियों से संबंधित वोटों पर इनका एकाधिकार समझा जाता था. चुनाव से पहले भी मीडिया में हो रही मोदी लहर की लाख चर्चाओं के बावजूद यह माना जा रहा था कि इस राज्य में भाजपा चालीस सीटों से ज्यादा शायद ही जीत पाए. लेकिन पूरे चुनाव प्रचार अभियान के दौरान मोदी के आकर्षण ने मतादाताओं को अपनी तरफ ऐसा खींचा की सारे मिथक टूटने में ज्यादा समय नहीं लगा. 16 मई को जैसे-जैसे नतीजे खुलते गए सत्ताधारी समाजवादी पार्टी और दलित मतों पर अपना एकाधिकार समझने वाली बहुजन समाज पार्टी को अपने सारे सपने टूटते नजर आए. इस राज्य में भाजपा ने 73 सीटें जीतकर जहां सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए वहीं सपा को सिर्फ 5 सीटें आईं और कांग्रेस 2 पर सिमट कर रह गई. बसपा तो अपने गढ़ में भी अपना खाता नहीं खोल पाई.

चुनाव की शुरुआत में ही जब नरेंद्र मोदी ने वाराणसी लड़ने की घोषणा की थी उसके बाद से ही यह माना जा रहा था कि राज्य में पार्टी का प्रदर्शन अच्छा होने जा रहा है. लेकिन चुनाव में भाजपा का ऐसा डंका बजेगा किसी को उम्मीद नहीं थी. हालत यह हो गई वाराणसी सीट नरेंद्र मोदी ने लगभग पौने चार लाख मतों के अंतर से जीती. जबकि ऐसा कहा जा रहा था कि दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री और आम आदमी पार्टी के संयोजक अरविंद केजरीवाल की भी दावेदारी के बाद मोदी की जीत का अंतर कम रहेगा. कुछ ऐसा ही हाल सपा मुखिया का आजमगढ़ सीट पर रहा. बहुत मश्किल से मुलायम अपनी यहां की सीट बचा पाए. ऐसा हाल लगभग राज्य में दूसरी पार्टी के सभी बड़े नेताओं का रहा. कांग्रेस की रीता बहुगुणा जोशी को भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह ने हराया. मुरली मनोहर जोशी ने यूपीए सरकार में मंत्री रहे श्री प्रकाश जायसवाल को बहुत आसानी से हरा दिया. वहीं अमेठी सीट पर हर बार आसानी से जीत जाने वाले राहुल गांधी भी मतगणना के दौरान दूसरे नंबर पर पहुंच गए थे. हालांकि उनके लिए सुखद यह रहा कि आखिरी नतीजों में विजयी रहे.

कुछ ऐसी ही स्थिति बिहार में भी रही. पिछले साल सत्ताधारी जदयू ने भाजपा से अपना नाता तोड़ लिया था. इस निर्णय को शुरुआत में मुसलमान मतों से जोड़कर देखा जा रहा था. ऐसा कहा जा रहा था नीतीश कुमार को नरेंद्र मोदी के पीएम उम्मीदवार बन जाने के बाद मुस्लिम मतों के छिटकने का डर सता रहा था. इसके बाद भाजपा के साथ लोजपा और रालोसपा के साथ गठबंधन हुआ. चुनाव परिणाम आने के बाद राज्य में एनडीए को आशा से ज्यादा सफलता हाथ लगी. राज्य में एनडीए गठबंधन को 31 सीटें हासिल हुईं. वहीं राजद और कांग्रेस के यूपीए गठबंधन को 7 सीटें मिलीं जबक सत्ताधारी जदयू को मात्र 2 सीटों से ही संतोष करना पड़ा. एनडीए के संयोजक रहे शरद यादव भी चुनाव हार गए. सिर्फ इतना ही नहीं कई बड़े नेताओं को राज्य की जनता के हाथों निराशा हाथ लगी. इनमें पूर्व मुख्यमंत्री राबड़ी देवी, पूर्व मुख्यमंत्री राम सुंदर दास, लालू यादव की बेटी मीसा भारती शामिल हैं. हालांकि भागलपुर सीट से भाजपा के कद्दावर नेता शाहनवाज हुसैन को भी कड़े मुकाबले में हार का सामना करना पड़ा.

मध्य प्रदेश के चुनाव के बारे में तो पहले से यह कयास लगाए जा रहे थे कि राज्य में भाजपा का प्रदर्शन काफी अच्छा रहेगा. कुछ ही महीनों पहले सम्पन्न हुए विधान सभा चुनावों के दौरान भी पार्टी वहां से भारी बहुमत से जीतकर आई थी. शिवराज सिंह चौहान की राज्य में लोकप्रियता और नरेंद्र मोदी लहर ने राज्य में पार्टी को बेहतर नतीजा देने में और आसानी कर दी. राज्य की 29 लोकसभा सीटों में से भाजपा ने 27 पर विजयश्री हासिल की. सिर्फ दो सीटों पर कांग्रेसी प्रत्याशी जीत पाए. इनमें गुना से ज्योतिरादित्य सिंधिया और छिंदवाड़ा से कमलनाथ रहे. ये दोनों ही पूर्ववर्ती यूपीए सरकार में मंत्री थे. एक तरीके से राज्य में भाजपा ने अपना ऐसा परचम लहराया कि कांग्रेस के लिए कोई जगह ही नहीं छोड़ी. ■

सबसे कम अंतर से जीतने वाले उम्मीदवार

लोकसभा क्षेत्र	प्रत्याशी	राज्य	अंतर
लद्दाख	तुपसन चेवांग	जम्मू और कश्मीर	36
महासमुंद	चंदू लाल साहू	छत्तीसगढ़	1217
लक्षद्वीप	मोहम्मद फैजल पी पी	लक्षद्वीप	1535
हिंगोली	राजीव शंकर राव सातव	महाराष्ट्र	1632
नंदूरबार	बलभद्र माझी	ओडिशा	2042

पश्चिमी राज्यों का मोदी में भरोसा

अरुण तिवारी

गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान में से दो राज्य तो ऐसे रहे जहां पर भारतीय जनता पार्टी ने सभी सीटों पर विजय पताका फहराई. भाजपा के पीएम उम्मीदवार और गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को राज्य जनता ने पीएम बनाने के लिए पूरा योगदान दिया. राज्य में मोदी की लोकप्रियता का आलम यह रहा कि पार्टी के ज्यादातर उम्मीदवार भारी मतों से विजयी हुए. वहीं राजस्थान में मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे सिंधिया का सिक्का एक बार फिर चला और सभी सीटों पर पार्टी उम्मीदवारों ने जीत हासिल की. महाराष्ट्र में भाजपा और शिवसेना का गठबंधन चुनाव लड़ रहा था. दोनों पार्टियों का काफी पुराना गठबंधन है. गठबंधन ने राज्य में अभी तक का सबसे बेहतरीन प्रदर्शन किया. आइए नजर डालते हैं इन राज्यों के चुनाव परिणामों पर.

पहले बात करते हैं राजस्थान की. ज्यादा समय नहीं बीता जब राज्य में विधानसभा चुनाव हुए थे. इन चुनावों भारतीय जनता पार्टी को प्रचंड बहुमत मिला था और अशोक गहलोत को करारी मात मिली थी. लोकसभा चुनावों के नतीजे तो जख्म पर नमक लगाने वाले जैसे साबित हुए. राज्य की एक भी सीट कांग्रेस पार्टी नहीं बचा पाई जबकि यहां से यूपीए सरकार के कई मंत्रियों और लोकप्रिय नेताओं के अलावा भारतीय क्रिकेट टीम के पूर्व कप्तान मोहम्मद अजहरुददीन की प्रतिष्ठा दांव पर थी. राज्य में सचिन पायलट, सीपी जोशी और जीतेंद्र सिंह जैसे लोगों को हार का सामना करना पड़ा. जबकि भाजपा की ओर से पहली बार चुनाव मैदान में उतरे ओलंपिक पदक विजेता राज्य वर्धन सिंह राठौर ने सीपी जोशी को करारी शिकस्त देते हुए संसद में पहुंचने का गौरव हासिल किया. राज्य के चुनाव में बाड़मेर की सीट भाजपा के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गई थी क्योंकि यहां से पार्टी के कद्दावर नेता रहे जसवंत सिंह निर्दलीय ही भाजपा प्रत्याशी सोना राम के विरोध में खड़े हो गए थे. हालांकि भाजपा ने अपनी पूरी ताकत इस सीट पर झोंक दी थी और आखिरकार उसे सफलता भी हासिल हुई. राज्य में वसुंधरा राजे सिंधिया ने अपना डंका बजा दिया है और यह साबित कर दिया कि राज्य भाजपा में भविष्य में उनके निर्णयों को ही सबसे ऊपर तरजीह दी जाएगी.

लगभग सभी पार्टियों कई हाई प्रोफाइल नेताओं की किस्मत महाराष्ट्र में दांव पर थी.

अगर नरेंद्र मोदी के गृह राज्य गुजरात की बात की जाए तो यहां पर तो पहले से ही यह उम्मीद की जा रही थी भाजपा बेहतरीन प्रदर्शन करेगी. इसका कारण यह भी है कि राज्य में पिछले कई बार से भाजपा की सरकार और नरेंद्र मोदी अपने राज्य में काफी लोकप्रिय भी हैं.

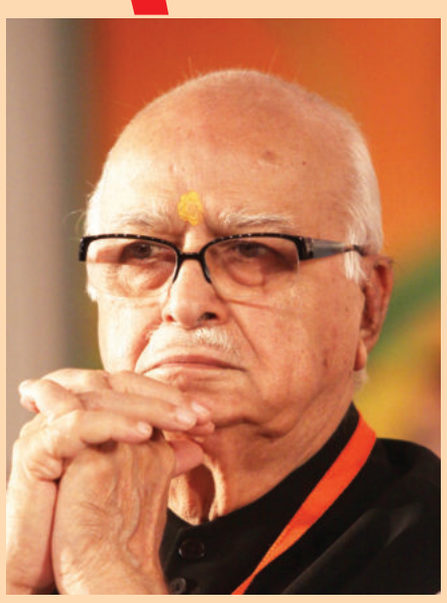

सुशील कुमार शिंदे, प्रिया दत्त, मेधा पाटेकर, गोपी नाथ मुंडे, मुरली देवड़ा, संजय निरूपम, पूनम महाजन, किरीट सोमैया, नितिन गडकरी, छगन भुजबल जैसे लोगों की इज्जत दांव पर थी. इनमें से कई नेता अपनी प्रतिष्ठा बचा पाए तो कई चुनावी समर में शहीद हो गए. भाजपा और शिवसेना गठबंधन ने राज्य की 48 में से 42 सीटों पर सफलता पाई जिनमें से 23 सीटों पर भाजपा और 19 सीटों पर शिवसेना ने जीत हासिल की. कांग्रेस के लगभग सभी बड़े नेताओं को अपनी सीटें गंवानी पड़ीं. इनमें पूर्व गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे भी शामिल हैं. वहीं मशहूर सामाजिक कार्यकर्ता और आम आदमी पार्टी की उम्मीदवार मेधा पाटेकर भी चुनावी मैदान में बुरी तरह परास्त हुईं. पूर्व भाजपा अध्यक्ष नितिन गडकरी ने विजय पताका फहराई. अमूमन पूरे राज्य में एनडीए का ही जलवा रहा. शरद पवार की पुत्री सुप्रिया सूले हालांकि अपनी सीट बचाने में कामयाब हो गईं. चुनाव पूर्व ऐसा माना जा रहा था कि राज्य में यूपीए सरकार का प्रदर्शन अन्य राज्यों की तुलना में ठीक हो सकता है लेकिन इतना बुरा हाल होगा, इसकी किसी को भी उम्मीद नहीं थी.

अगर नरेंद्र मोदी के गृह राज्य गुजरात की बात की जाए तो यहां पर तो पहले से ही यह उम्मीद की जा रही थी भाजपा बेहतरीन प्रदर्शन करेगी. इसका कारण यह भी है कि राज्य में पिछले कई बार से भाजपा की सरकार है और नरेंद्र मोदी अपने राज्य में काफी लोकप्रिय भी हैं. यहां से भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता लाल कृष्ण आडवाणी और मशहूर बॉलीवुड कलाकार परेश रावल चुनाव मैदान में थे. दोनों ने भारी मतों के अंतर से जीत हासिल की. जहां परेश रावल लगभग सवा तीन लाख मतों से विजयी हुए वहीं आडवाणी ने तकरीबन पौने पांच लाख मतों से जीत हासिल की. ऐसा लगता है जैसे राज्य की जनता ने यह पहले से ठान लिया हो कि इस बार तो राज्य की सभी सीटों पर भाजपा को जीत दिलानी ही है. इस राज्य में साल 2009 के लोकसभा चुनावों में यूपीए को 12 सीटों पर जीत हासिल हुई थी लेकिन इस बार के चुनाव पार्टी के लिए किसी बुरे सपने की तरह साबित हुए थे. आम आदमी पार्टी के संयोजक अरविंद केजरीवाल ने चुनाव प्रचार के दौरान यहां आकर यह कोशिश की थी पार्टी का जनाधार राज्य में बढ़ाया जाए लेकिन नतीजों में इसका कोई प्रभाव सामने नहीं आया.

कुल मिलाकर इन राज्यों में एनडीए गठबंधन ने न सिर्फ जीत हासिल की बल्कि ऐतिहासिक जीत हासिल की. यूपीए शासन से थक चुकी जनता को मोदी ने अपने भाषणों के दौरान आशावान भविष्य के सपने दिखाए और जनता ने उनपर भरोसा भी किया. अब देखना यह होगा कि नरेंद्र मोदी जनता की उम्मीदों पर कितना खरे उतर पाते हैं. ■

सबसे ज्यादा मतों से जीतने वाले पांच उम्मीदवार

लोकसभा क्षेत्र	प्रत्याशी	राज्य	अंतर
बड़ोदरा	नरेंद्र मोदी (भाजपा)	गुजरात	570128
ग़ाजियाबाद	जनरल वी के सिंह (भाजपा)	उत्तरप्रदेश	567260
नवसारी	सी आर पाटिल (भाजपा)	गुजरात	558116
सूरत	दर्शन विक्रम जरदोश (भाजपा)	गुजरात	533190
त्रिपुरा वेस्ट	अरुणोदय साहा (सीपीआईएम)	त्रिपुरा	503486

सन् 1902 की एक घटना है, जब बाबा के भक्त अप्पा केवल 11 वर्ष के थे. वह अपने पशुओं को छोड़ने के लिए बाहर जाने वाले थे, तभी बाबा ने एकाएक उन्हें जाने से रोक लिया और अचानक क्रुद्ध होकर हाथ ऊपर उठाकर बम–बम बोलने लगे, जो इस बात का सूचक था कि कोई अनिष्ट हो रहा है. बाद में पता चला कि उसी समय उनके एक निकट संबंधी की मृत्यु हो गई थी.

अप्पा पटेल पर साई कृपा

चौथी दुनिया ब्यूरो

शिरडी निवासी भैया जी अप्पा पटेल (जन्म सन् 1889 ई.) बाबा के परम भक्त थे. वह बाबा को बचपन से जानते थे, क्योंकि उनका घर वहीं स्थित था, जहां बाबा भिक्षा लेने आया करते थे. ग्यारह वर्ष की आयु से प्राय: वह ही बाबा को भिक्षा दिया करते थे. पहले बाबा दिन में आठ बार, फिर कुछ वर्षों तक चार बार और फिर केवल दो बार ही भिक्षा लेने आते थे तथा अंतिम दिनों में केवल एक बार ही आने लगे. इस प्रकार उनका भिक्षा का क्रम धीरे–धीरे कम होता गया. बाबा के एक और भक्त थे, अप्पा कुलकर्णी, जो बाबा की कृपा से एक झूठे आरोप से मुक्त हो गए थे. अत: बाबा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उन्होंने बाबा की अनुमति लेकर मस्जिद में राम नवमी उर्स का आयोजन कराया. यह सन् 1896 की बात है, जबकि यह पहली बार आयोजन हुआ, किंतु इसके बाद यह आयोजन प्रतिवर्ष होने लगा. इस आयोजन में हिंदू एवं मुस्लिम–सभी भक्त साथ–साथ हिस्सा लेते थे. यहां पर उल्लेखनीय है कि बाद में हिंदू भक्त अपने मुस्लिम भाइयों को चंदन का टीका लगाने लगे, जिसे वे सहर्ष स्वीकार करते थे. इस तरह बाबा ने हिंदू– मुस्लिम एकता का एक आदर्श स्थापित किया.

सन् 1902 की एक घटना है, जब बाबा के भक्त अप्पा केवल 11 वर्ष के थे. वह अपने पशुओं को छोड़ने के लिए बाहर जाने वाले थे, तभी बाबा ने एकाएक उन्हें जाने से रोक लिया और अचानक क्रुद्ध होकर हाथ ऊपर उठाकर बम–बम बोलने लगे, जो इस बात का सूचक था कि कोई अनिष्ट हो रहा है. बाद में पता चला कि उसी समय उनके एक निकट संबंधी की मृत्यु हो गई थी. वह तीस वर्ष का था. बाबा ने अपने जीवन के अंतिम चौदह वर्षों में नियमित रूप से अप्पा को प्रतिदिन चार रुपये दिए. यहां तक कि अंतिम दिन भी उन्होंने ऐसा किया. बाबा ने उन्हें यह भी निर्देश दिया था कि इन रुपयों को न तो कभी खर्च करना और न किसी और को देना. इसलिए वह इन सारे रुपयों से केवल जमीन खरीदते रहे. उन्होंने कुल चौरासी एकड़ जमीन बाबा के रुपयों से खरीदी. बाबा ने कई बार उन्हें भविष्य के अनिष्ट की सूचनाएं देकर संकट से बचाया था. उन्हें खेती के बारे में भी बाबा कई बार अग्रिम निर्देश देते रहते थे. उन दिनों लोग गन्ना लगाने के पीछे पड़े हुए थे अत: वह भी ऐसा ही करना चाहते थे.

बाबा ने उन्हें मना किया, लेकिन वह अपने आपको रोक नहीं सके. परिणामस्वरूप उन्हें उस वर्ष कृषि से 300 रुपये की हानि हुई. इसी प्रकार 1913 में उनके पिता जी, जो कि सत्तर वर्ष के हो चुके थे, घोड़े पर सवार होकर कहीं गए थे. जब वह लौटे, तो उन्हें लकवा की बीमारी हो गई थी. अप्पा बाबा के पास गए और उनसे विभूति मांगी. बाबा ने कहा, अल्लाह मालिक है. वह रोते हुए वापस आ गए. तीसरे दिन कार्तिक शुक्ल एकादशी दिन रविवार को उनके पिता जी की मृत्यु हो गई. वह बहुत दु:खी थे. उन्हें दु:खी देखकर बाबा ने उनसे कहा, अरे! दु:खी क्यों होता है? वह पांच महीने में वापस आ रहा है. वस्तुत: पांच महीने बाद ही उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई. बाबा के कहे वचन सत्य हो गए. अप्पा प्राय: बाबा की मालिश करते थे. मालिश के बाद सर्दियों में बाबा को उठाकर अंगीठी के पास बैठा दिया जाता था. इस बात को लेकर अप्पा को घमंड हो गया कि वह इतने शक्तिशाली हैं. वह खुद को भीम जैसा पहलवान समझने लगे, किंतु बाबा किसी के भी गर्व और अहंकार को बहुत बढ़ने नहीं देते थे. अत: एक दिन जब वह मालिश के बाद बाबा को उठाने लगे, तो सारी ताकत लगाने के बावजूद उन्हें उठा नहीं सके. बाबा हंस पड़े और बोले, कभी अपने आप पर घमंड मत करो.■

feedback@chauthiduniya.com

साई के ग्यारह वचन

1-जो शिरडी आएगा, आपदा दूर भगाएगा.
2-चढ़े समाधि की सीढ़ी पर, पैर तले दु:ख की पीढ़ी पर.
3-त्याग शरीर चला जाऊंगा, भक्त हेतु दौड़ा आऊंगा.
4-मन में रखना दृढ़ विश्वास, करे समाधि पूरी आस.
5-मुझे सदा जीवित ही जानो, अनुभव करो सत्य पहचानो.
6-मेरी शरण आ खाली जाए, हो कोई तो मुझे बताए.
7-जैसा भाव रहा जिस मन का, वैसा रूप हुआ मेरे मन का.
8-भार तुम्हारा मुझ पर होगा, वचन न मेरा झूठा होगा.
9-आ सहायता लो भरपूर, जो मांगा वही नहीं है दूर.
10-मुझमें लीन वचन मन काया, उसका ऋण न कभी चुकाया.
11-धन्य-धन्य वह भक्त अनन्य, मेरी शरण तज जिसे न अन्य.

साई भक्तों!

आप भी चौथी दुनिया को साई से जुड़ा लेख या संस्मरण भेज सकते हैं. मसलन, साई से आप कब और कैसे जुड़े. साई की कृपा आपको कब से मिलनी शुरू हुई. आप साई को क्यों पूजते हैं. कैसे बने आप साई भक्त. साई बाबा का जीवन और चरित्र आपको किस तरह से प्रेरित करता है. साई बाबा के बारे में अनेक किंवदंतियां हैं, क्या आपके पास भी कुछ कहने के लिए है? अगर हां, तो केवल 500 शब्दों में अपनी बात कहने की कोशिश करें और नीचे दिए गए पते पर भेजें.

चौथी दुनिया
एफ–2, सेक्टर–11, नोएडा (गौतमबुद्ध नगर), उत्तर प्रदेश, पिन–201301
ई–मेल feedback@ chauthiduniya.com

दशम ज्योतिर्लिंग रामेश्वरम्

...जहां राम को मिला विजयी होने का आशीर्वाद

धर्मेंद्र सिंह

रामेश्वरम् हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थल है. यह तमिलनाडु के रामनाथपुरम ज़िले में स्थित है. इस मंदिर में स्थापित शिवलिंग बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है. रामेश्वरम् के बारे में दो मान्यताएं हैं. पहली यह कि जब मर्यादा पुरुषोत्तम राम माता सीता को रावण से मुक्त कराने के लिए लंका जा रहे थे, तब उन्हें रास्ते में प्यास लगी. जब वह पानी पीने लगे, तभी उन्हें याद आया कि उन्होंने भगवान शिव के दर्शन नहीं किए हैं. ऐसे में वह कैसे जल ग्रहण कर सकते हैं. तब उन्होंने विजय प्राप्ति के लिए समुद्र के किनारे बालू का शिवलिंग स्थापित करके उसका पूजन किया. राम जानते थे कि रावण भी शिव जी का परम भक्त है और उसे हरा पाना कठिन काम है. इसलिए राम ने शिव जी से प्रार्थना की. भगवान शिव प्रसन्न होकर माता पार्वती के साथ प्रकट हुए और राम को विजयी होने का आशीर्वाद दिया. श्रीराम ने शिव जी से लोक कल्याण के लिए उसी स्थान पर शिवलिंग के रूप में सदा निवास करने की प्रार्थना की, जिसे भगवान शिव ने स्वीकार कर लिया. वही शिवलिंग मंदिर में स्थापित है.

दूसरी मान्यता है कि जब मर्यादा पुरुषोत्तम राम रावण का वध करके अयोध्या लौट रहे थे, तब वह गंधमादन पर्वत पर विश्राम करने के लिए रुके. वहां उनसे ऋषियों ने कहा कि उनके द्वारा पुलस्त्य कुल का विनाश हुआ है, जिससे उन्हें ब्रह्म–हत्या का दोष लगा है. श्रीराम ने इससे मुक्त होने के लिए उपाय पूछा, तो ऋषियों ने कहा, आप शिवलिंग की स्थापना करके

उसकी पूजा करेंगे, तो सभी पापों से मुक्त हो जाएंगे. श्रीराम ने हनुमान जी को आदेश दिया कि वह कैलाश पर्वत जाकर शिवलिंग लेकर आएं. हनुमान जी को कैलाश पर शिवलिंग के दर्शन नहीं हुए, तो उन्होंने वहीं तपस्या शुरू कर दी. इस पर भगवान शिव प्रकट हुए और उन्होंने हनुमान जी को शिवलिंग दिया, जिसे वह लेकर श्रीराम के पास आए. इधर उन्हें आने में देर होने के कारण श्रीराम ने माता जानकी द्वारा बनाए गए बालू के शिवलिंग का पूजन किया, क्योंकि पूजा करने का समय हो गया था. इसलिए हनुमान जी द्वारा लाए गए शिवलिंग को वहीं समीप में स्थापित कर दिया गया. श्रीराम ने उस शिवलिंग का नाम हनुमदीश्वर रखा. रामेश्वरम् और हनुमदीश्वर की प्रशंसा श्रीराम ने स्वयं की है. मंदिर में इसके अतिरिक्त भी कई सुंदर शिव प्रतिमाएं स्थापित हैं. नंदी की भी एक बहुत विशाल एवं आकर्षित मूर्ति है. शिव–पार्वती की प्रतिमाओं की प्रत्येक वर्ष शोभा यात्रा निकाली जाती है. सोने और चांदी के वाहनों पर भगवान शिव और माता पार्वती को बैठाया जाता है. इस मौक़े पर ज्योतिर्लिंग को श्वेत उत्तरीय और चांदी के त्रिपुंड से सजाया जाता है. ज्योतिर्लिंग पर गंगा जल चढ़ाने का विशेष महत्व है. यदि आपके पास गंगा जल नहीं है, तो वहां के पुजारी दक्षिणा लेकर गंगा जल देते हैं. सुबह 4 बजे से 6 बजे तक मणि दर्शन कराया जाता है, जिसमें स्फटिक का शिवलिंग होता है. मंदिर के अंदर विशालाक्षी देवी के गर्भगृह के पास नौ ज्योतिर्लिंग हैं. बताया जाता है कि इनकी स्थापना विभीषण द्वारा कराई गई थी. रामेश्वरम् के दर्शन मात्र से ब्रह्म–हत्या जैसे पाप दूर हो जाते हैं. यहां दर्शन के लिए प्रत्येक वर्ष देश–विदेश से लाखों लोग आते हैं. रामेश्वरम् मंदिर का गलियारा विश्व का सबसे लंबा गलियारा है. रामेश्वरम् एक शंख आकार का द्वीप है और यह चारों तरफ़ से बंगाल की खाड़ी और हिंद महासागर से घिरा हुआ है.

कैसे पहुंचें: यह स्थान दक्षिण में समुद्र के किनारे स्थित है. यह हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी का संगम है. यहां जाने के लिए आप रेल और हवाई मार्ग का प्रयोग कर सकते हैं. इसके लिए सबसे पहले आपको चेन्नई जाना पड़ेगा. चेन्नई से आप ट्रेन द्वारा रामेश्वरम् जा सकते हैं. देश के विभिन्न हिस्सों से आप टूरिस्ट बसों के माध्यम से भी रामेश्वरम् पहुंच सकते हैं.■

feedback@chauthiduniya.com

पाठकों की दुनिया

साई बाबा की महिमा

चौथी दुनिया के 14–20 अप्रैल के अंक में साई बाबा पर प्रकाशित आलेख पढ़कर बहुत अच्छा लगा. साई बाबा के बारे में कुछ भी कहना सूरज को दिया दिखाने जैसी बात है, पर बाबा के बारे में पढ़कर, उनकी दया देखकर ज़रूर कुछ न कुछ कहने का मन हो जाता है.

–मूलचंद अग्रवाल, *पाटलिपुत्र, बिहार.*

काश! भाजपा भी...

भाजपा देश की दूसरी सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी है और देश में दूसरी सबसे बड़ी आबादी मुसलमानों की है. दोनों सामान्यत: एक–दूसरे से दूरी बनाकर रहते हैं. यह स्थिति देश हित में नहीं है. इसे बदलने की ज़रूरत है, किंतु यह कैसे संभव होगा? भाजपा ने नरेंद्र मोदी को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया है और अपने घोषणा–पत्र में उसने पहली बार उर्दू, मदरसों एवं मुसलमानों को सुरक्षित माहौल देने की बात कही है. संघ की कोख से जन्मी भाजपा के लिए संकीर्णता, घृणा एवं सांप्रदायिकता के मायाजाल से निकल पाना मुश्किल तो है, किंतु असंभव नहीं है. भाजपा धर्मनिरपेक्षता की शपथ तो लेती है, लेकिन अपनी सुविधानुसार उसकी नई परिभाषा गढ़ लेती है. भारत का मुस्लिम समाज इज्जत की रोटी और सुरक्षित जीवन के लिए चिंतित है, जो उसे वास्तव में नहीं मिल पा रहा है. उसकी स्थिति दलित समाज से भी ख़राब है. भाजपा मुस्लिम हित की बात तो करती है, लेकिन जब मुस्लिम हित की बात आती है, तो पूरा संघ परिवार तुष्टिकरण का आरोप लगाकर शोर मचाता है. भाजपा को मुसलमानों की तरफ़ उदारतापूर्वक हाथ बढ़ाना और उनका हितैषी बनकर दिखाना चाहिए. यही भाजपा, मुस्लिम समाज और देश के हित में है.

–डॉ. हैदर अली खां, *बलिया, उत्तर प्रदेश.*

बलिया की उपेक्षा

16वीं लोकसभा का चुनाव अंतिम दौर में है. परिवर्तन की इस जबरदस्त लहर में हर कोई सियासी चाल चलने को बेताब है, भले ही मतलब निकल जाने के बाद जनता को पानी तक न पूछा जाए. पिछली सरकार की नाकामियों का ढिंढोरा पीटकर हर पार्टी चुनावी वैतरणी पार करना चाहती है, लेकिन जन–सरोकार के मुद्दे गायब हैं. देश की जनता भ्रष्टाचार, महंगाई, ग़रीबी और बेरोज़गारी से त्रस्त है. उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल बहुत पिछड़ा हुआ है. पूर्वांचल की सीटों से इस बार भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार समेत कई सूरमा भाग्य आजमा रहे हैं. बलिया शुरू से क्रांतिकारियों की कर्मभूमि रहा है. देश को चंद्रशेखर जैसा प्रधानमंत्री देने वाला यह ज़िला आज भी विकास को तरस रहा है. वर्तमान में राज्य की सपा सरकार में यहां से तीन मंत्री हैं, बावजूद इसके सीवर निर्माण के लिए उखाड़ी गईं सड़कें आज तक नहीं बन पाईं. प्रतिदिन दुर्घटनाएं हो रही हैं. यहां मेडिकल कॉलेज एवं विश्वविद्यालय की मांग दब गई है. कभी–कभी नेता–मंत्री यहां आते हैं, लेकिन अपने–अपने स्वार्थ के लिए. बलिया को विकास से जोड़ने का सपना केवल वादों में सिमट गया है.

–नवचंद्र तिवारी, *बलिया, उत्तर प्रदेश.*

सोनिया का त्याग महज ढोंग था

28 अप्रैल–4 मई के अंक की कवर स्टोरी–मनमोहन सिंह रबड़ स्टैंप प्रधानमंत्री, काफी विचारोत्तेजक है. पुस्तकों में प्रकाशित तथ्यों को लेकर अक्सर विवाद होते हैं, क्योंकि उनसे किसी को ठेस पहुंचती है. आलेख में जिन किताबों का जिक्र किया गया है, उनमें से एक के लेखक संजय बारू को अपनी किताब और पहले प्रकाशित करनी चाहिए थी, जिससे यूपीए सरकार की सच्चाई देश के सामने पहले आ जाती. सोनिया गांधी खुद को त्याग की मूर्ति दर्शाती हैं, लेकिन सच इसके विपरीत है. इस चुनाव में यूपीए और कांग्रेस को जनता के साथ विश्वासघात का परिणाम भुगतना होगा.

–अखिलेश ओझा, *बक्सर, बिहार.*

चिंताजनक स्थिति

28 अप्रैल–4 मई के अंक में प्रकाशित आलेख–लोकसभा: 1952 से अब तक...के तहत महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के बारे में जानकारी मिली. भारतीय संसद में महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों की संख्या चिंताजनक है. राजनीतिक दल महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों की हितैषी तो बनती हैं, लेकिन जब टिकट देने की बारी आती है, तो पीठ दिखा देती हैं. राजनीतिक दलों को इस दिशा में सोचना चाहिए, जिससे संसद में महिलाओं एवं अल्पसंख्यकों की भागीदारी बढ़े.

–आकांक्षा चौहान, *जमशेदपुर, झारखंड.*

चौथी दुनिया बने पत्रिका

मैं चौथी दुनिया का नियमित पाठक हूं. यह एक निर्भीक साप्ताहिक समाचार–पत्र है, जो देश के ज्वलंत मुद्दों और समस्याओं को बिना किसी दबाव के प्रकाशित करता है. समाचार–पत्र होने के कारण इसका साइज काफी लंबा–चौड़ा है, जिसे टाइम न होने के कारण बस या ट्रेन में पढ़ने में कठिनाई होती है. अगर इसे पत्रिका कर दिया जाए, तो अच्छा होगा, क्योंकि कहीं भी पढ़ने और रखने में दिक्कत नहीं होगी.

–सुरेश अग्रवाल, *भजनपुरा, नई दिल्ली.*

पाठक पूरा नाम, पता व फोन नंबर के साथ अपने स्वतंत्र विचार व प्रतिक्रियाएं इस पते पर भेजें :

चौथी दुनिया, एफ.2,
सेक्टर–11, नोएडा (उत्तर प्रदेश)
पिन–201301

बड़ी संख्या में उनके प्रशंसक हाथों में पीला गुलाब लिए अपने प्रिय लेखक को अंतिम विदाई देने पहुंचे थे. पीले फूल मार्केज को बेहद पसंद थे. इस अंतिम विदाई में कोलंबिया के राष्ट्रपति के साथ-साथ मैक्सिको के राष्ट्रपति भी शामिल हुए. दो राष्ट्राध्यक्षों की मौजूदगी और लैटिन अमेरिकी देशों में उसी वक्त अलग- अलग शहरों में अपने प्रिय लेखक को श्रद्धांजलि, उस समाज की सोच, अपने प्रिय लेखक के प्रति प्यार और सम्मान को दर्शाती है.

साहित्य के नायकों के प्रति उदासीन समाज

अनंत विजय

जादुई यथार्थवाद के जनक गाब्रिएल गार्सिया मार्केज को श्रद्धांजलि देने के लिए मैक्सिको सिटी के पैलेस ऑफ फाइन आर्ट्स में जो भीड़ उमड़ी, वह सचमुच जादुई लग रही थी. आधुनिक युग में लेखकों को श्रद्धांजलि देने के लिए लोग घंटों कतार में खड़े रहें, तो सचमुच आश्चर्य होता है. गाब्रिएल गार्सिया मार्केज के अंतिम संस्कार में भाग लेने के लिए कोलंबिया के राष्ट्रपति जुआन मैन्युल सैंटोस भी मैक्सिको पहुंचे. मार्केज का अंतिम संस्कार बगोटा कैथेड्रल में बेहद निजी समारोह में रिश्तेदारों की मौजूदगी में हुआ. जब बगोटा कैथेड्रल में मार्केज का अंतिम संस्कार हो रहा था, उसी वक्त प्रतीकात्मक अंतिम संस्कार कोलंबिया के उनके पैतृक शहर में भी किया गया, जिसमें बड़ी संख्या में उनके प्रशंसक और स्थानीय सरकार के नुमाइंदे शामिल हुए. गाब्रिएल गार्सिया मार्केज को यह सम्मान तब प्राप्त हो रहा था, जब 1981 में उन्होंने कोलंबियाई सेना द्वारा पूछताछ की आशंका के बाद देश छोड़ दिया था.

अपने देश से तीन दशक से बाहर रहने के बावजूद गाब्रिएल गार्सिया मार्केज का वहां इतना सम्मान हो रहा था, जो यह साबित करता है कि वह किसी भी नेशनल हीरो से कम लोकप्रिय नहीं थे. बगोटा कैथेड्रेल में अंतिम संस्कार के बाद उनका अस्थिकलश मैक्सिको सिटी के पैलेस ऑफ फाइन आर्ट्स में रखा गया था. जब गाब्रिएल गार्सिया मार्केज के परिवार के सदस्य अस्थिकलश के साथ वहां खड़े हुए, तो पैलेस ऑफ फाइन आर्ट्स के बाहर तक मार्केज के चाहने वालों की लंबी कतार लगी थी. बड़ी संख्या में उनके प्रशंसक हाथों में पीला गुलाब लिए अपने प्रिय लेखक को अंतिम विदाई देने पहुंचे थे. पीले फूल मार्केज को बेहद पसंद थे. इस अंतिम विदाई में कोलंबिया के राष्ट्रपति के साथ-साथ मैक्सिको के राष्ट्रपति भी शामिल हुए. दो राष्ट्राध्यक्षों की मौजूदगी और लैटिन अमेरिकी देशों में उसी वक्त अलग- अलग शहरों में अपने प्रिय लेखक को श्रद्धांजलि, उस समाज की सोच, अपने प्रिय लेखक के प्रति प्यार और सम्मान को दर्शाती है. गाब्रिएल गार्सिया मार्केज को यह सम्मान उनके लेखन की बदौलत ही हासिल हुआ. गाहे-बगाहे वह कोलंबिया में शांति के प्रयास भी करते रहे थे.

क्यूबा के महान नेता फिडेल कास्ट्रो से गाब्रिएल गार्सिया मार्केज की दोस्ती भी उनके लेखन को लेकर ही थी. हवाना में मार्केज का अपना घर भी था. लेखन की बदौलत मार्केज ने सरहदों की सीमा लांघकर कई देशों में अपने लिए सम्मान अर्जित किया. इसके पहले मार्केज के घर पर उनके अंतिम दर्शन करने के लिए काफी लोग एकत्र हुए थे. उन तस्वीरों के बाद जब मैं मैक्सिको सिटी के पैलेस ऑफ फाइन आर्ट्स में मार्केज को अंतिम विदाई की तस्वीरें देख रहा था, तो बहुत शिद्दत से पिछले साल ही राजेंद्र यादव के निधन पर दिल्ली स्थित उनके घर का मंजर याद आ रहा था. देर रात राजेंद्र यादव का निधन हुआ था और जब उनके निधन की ख़बर सुनकर मैं तड़के उनके घर पहुंचा था, तो वहां चंद लोगों की मौजूदगी से हैरान रह गया. उनके जीवित रहते इससे ज़्यादा लोग तो हमेशा हंस के दफ्तर में रहा करते थे. यह तब हो रहा था, जबकि सुबह से देश के सभी टेलीविजन चैनलों पर यादव जी के निधन का समाचार चलने लगा था. आम लोगों की बात तो दूर, हिंदी के साथी साहित्यकार भी उन्हें श्रद्धांजलि देने उनके घर पर नहीं पहुंच पाए थे. महानगरीय व्यस्तता या महानगरीय उपेक्षा! राजेंद्र यादव दिल्ली के मयूर विहार इलाके में रहते थे, उसी मयूर विहार में हिंदी के दर्जनों स्वनामधन्य साहित्यकार रहते हैं, जिनमें से कई तो उनके घर पहुंचे भी नहीं, सीधे अंतिम संस्कार के मौक़े पर पहुंचे. उनमें से कई साहित्यकार तो यादव जी के साथ नियमित रसरंजन में भी शरीक होते रहे थे. यह भारतीय आधुनिक समाज का सच है. राजेंद्र जी हिंदी के सबसे लोकप्रिय लेखकों में से एक थे और हर उम्र के लोग उनके प्रशंसक थे. यादव जी के अंतिम संस्कार में देश के शीर्ष राजनेताओं का न पहुंचना भी अखर गया था. कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष ने पत्र लिखकर उनके निधन पर शोक जताया था, लेकिन सवाल यही है कि साहित्य के नायक की इतनी उपेक्षा क्यों? किसी छुटभैय्या नेता के अंतिम संस्कार में भी सैकड़ों लोग जुटते हैं. हम समाज का वह कोना हैं, जिसकी ओर हिंदी समाज ने कभी झांकने की कोशिश नहीं की.

क्यूबा के महान नेता फिडेल कास्ट्रो से गाब्रिएल गार्सिया मार्केज की दोस्ती भी उनके लेखन को लेकर ही थी. हवाना में मार्केज का अपना घर भी था. लेखन की बदौलत मार्केज ने सरहदों की सीमा लांघकर कई देशों में अपने लिए सम्मान अर्जित किया. इसके पहले मार्केज के घर पर उनके अंतिम दर्शन करने के लिए काफी लोग एकत्र हुए थे. उन तस्वीरों के बाद जब मैं मैक्सिको सिटी के पैलेस ऑफ फाइन आर्ट्स में मार्केज को अंतिम विदाई की तस्वीरें देख रहा था, तो बहुत शिद्दत से पिछले साल ही राजेंद्र यादव के निधन पर दिल्ली स्थित उनके घर का मंजर याद आ रहा था. देर रात राजेंद्र यादव का निधन हुआ था और जब उनके निधन की ख़बर सुनकर मैं तड़के उनके घर पहुंचा था, तो वहां चंद लोगों की मौजूदगी से हैरान रह गया.

ऐसा नहीं है कि सिर्फ़ राजेंद्र यादव के अंतिम संस्कार में इस तरह की उदासीनता देखने को मिली हो. भारत के महानतम लेखकों में से एक प्रेमचंद का जब निधन हुआ था, तो उनकी शवयात्रा में भी चंद लोग ही शामिल हुए थे. उनकी शवयात्रा देखकर किसी ने पूछा था, किसका निधन हुआ है, तो बताया गया कि कोई मास्टर साहब थे, गुजर गए. इससे इतर आचार्य रामचंद्र शुक्ल और निराला जी को अंतिम विदाई देने के लिए पूरा शहर ज़रूर उमड़ा था. सवाल यही है कि हिंदी समाज अपने लेखकों को नायक क्यों नहीं बना पाता है अथवा क्यों नहीं, वे समाज के हीरो के तौर पर उभरते हैं? क्यों नहीं हमारे देश में सड़कों और इमारतों के नाम लेखकों का नाम पर रखे जाते हैं? आप क्यूबा जाइए, तो वहां का अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा जोश मार्टिन के नाम पर है. जब आप शहर में प्रवेश करते हैं, तो आपको अंदाजा होगा कि लोग चे-ग्वारा की कितनी इज्जत करते हैं. हर सार्वजनिक जगह से लेकर घरों तक में चे-ग्वारा की बड़ी-बड़ी तस्वीरें आपको दिखाई देंगी. दूसरी तरफ़ दिल्ली से लेकर भारत के हर महानगर में गांधी, गांधी और सिर्फ़ गांधी के नाम की धूम है.

दिल्ली में हिंदी के साहित्यकारों के नाम पर कोई सड़क या इमारत हो, ऐसा याद नहीं आता. सुब्रह्मण्यम भारती और दिनेश नंदिनी डालमिया के नाम पर सड़क ज़रूर है. साहित्य अकादमी भवन का नाम रवींद्र नाथ ठाकुर के नाम पर है. प्रेमचंद के नाम पर कोई हवाई अड्डा या निराला के नाम पर कोई इमारत नहीं है. लेखकों के प्रति इस उदासीनता का जब हम जवाब ढूंढने निकलते हैं, तो लगता है कि इसके लिए हिंदी समाज की तटस्थता बहुत हद तक ज़िम्मेदार है. ज़िम्मेदार हमारा शासक वर्ग भी है, जो साहित्य से दूर होता जा रहा है. हमें अपने साहित्यकारों का मान करना सीखना होगा. नेहरू जैसा स्वप्नदर्शी प्रधानमंत्री या फिर लेखकों का सम्मान करने वाला नेता भारत में दूसरा नहीं हुआ. इंदिरा गांधी भी बहुत हद तक कलाकारों का सम्मान करती थीं, लेकिन बाद के प्रधानमंत्रियों की प्राथमिकता में साहित्य, कला, संस्कृति रही ही नहीं, लिहाजा इनके प्रति उपेक्षा और उदासीनता बढ़ती चली गई. रही-सही कसर साहित्य की राजनीति ने पूरी कर दी. आज हमारे बीच नामवर सिंह जैसे प्रतिष्ठित लेखक हैं. ऐसे में क्या सरकार का यह दायित्व नहीं बनता कि वह उन्हें राज्यसभा में मनोनीत करे. लेखकों के नाम पर पार्टी के चापलूसों को संसद में भेजने की परंपरा बंद होनी चाहिए. भारत के साहित्य समाज को भी सरकार पर यह दबाव बनाना होगा कि वह हमारे शीर्ष लेखकों का फिर से सम्मान करना शुरू करे.■

(लेखक IBN7 से जुड़े हैं)

anant.ibn@gmail.com

कविताएं

लेनिन की जीवनी का मुड़ा हुआ पन्ना

सुशील कुमार

इस कोलाहल के बीच
कुछ लोग जयकारा नहीं लगा रहे हैं
टोपी भी नहीं पहनते हैं
न लाठी, न तलवार, न त्रिशूल, न टीका
कुछ पूछो तो मुस्कुरा देते हैं बस.
क्या वे सच में तृप्त लोग हैं
क्या ये उनकी आंतरिक शांति है
या ऐसे लोगों का मौन
ज्वालामुखी विस्फोट से ठीक पहले
पर्वत की चोटी पर पसरे सन्नाटे जैसा है?
अपने अंदर खौलता हुआ लावा भरकर
ये लोग चुपचाप जोत रहे हैं
आज की बेनूरी सुबह
और क्रांति की भोर के बीच की बंजर ज़मीन
जहां उनके पसीने की एक-एक बूंद
मिट्टी में दबकर अंकुरित हो रही है.
ये लोग उस मुड़े हुए पन्ने से आगे
पढ़ रहे हैं लेनिन की जीवनी
जिसे फांसी के तख्ते तक जाने से ठीक पहले
भगत सिंह अपने सेल में छोड़ गए थे,
ये लोग सोवियत संघ की कब्र पर उपजी
हरी विषाक्त घास खाने वालों में नहीं हैं.■

मिट्टी में उतरे बिना

सदियों से
बदलते आए हैं सवाल
जवाब वही होते हैं
तयशुदा,
अंकुरण की तरह
मिट्टी में उतरे बिना
नहीं बदलते हैं जवाब,
वक्त नाजुक है
उसने भेष बदला है
क्योंकि खुलेआम
वह घूम नहीं सकता था यहां,
वक्त नाजुक है
अब मेमने भी उसको
भेड़ समझने लगे हैं,
खून से लथपथ पंजे
आसानी से मासूमों के
क़रीब जा रहे हैं.■

feedback@chauthiduniya.com

जननायक को समझने की कोशिश

डॉ. मुसाफिर बैठा

पत्रिका परिषद साक्ष्य का यह नया अंक है. बिहार विधान परिषद की यह अनियतकालीन वैचारिक-साहित्यिक पत्रिका तक़रीबन पंद्रह वर्षों से प्रकाशित हो रही है, जो पहले साक्ष्य नाम से निकली और अब परिषद साक्ष्य नाम से निकल रही है. पत्रिका की खासियत यह है कि इसके तमाम अंक किसी न किसी विषय, मुद्दे अथवा व्यक्ति विशेष पर आधारित रहे, जैसे महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण, प्रेमचंद, दिनकर, नदी, पर्यावरण, कला, बिहार आदि. परिषद साक्ष्य के आलोच्य जननायक कर्पूरी ठाकुर स्मरण अंक के प्रधान संरक्षक एवं बिहार विधान परिषद के वर्तमान सभापति अवधेश नारायण सिंह ने अपनी बात रखते हुए पत्रिका के संस्थापक संपादक, विधान परिषद के पूर्व सभापति एवं हिंदी-उर्दू के ख्यातिलब्ध साहित्यकार प्रो. जाबिर हुसैन का आभार जताया. जाबिर हुसैन वर्तमान में हिंदी-उर्दू के लेखकों को साझा मंच देने के उद्देश्य से हिंदी में दोआबा नामक एक साहित्यिक-वैचारिक पत्रिका निकलते हैं.

परिषद साक्ष्य के संपादक डॉ. उपेंद्र प्रसाद ने संपादकीय में लिखा है कि देश के करोड़ों वंचितों की मांग है कि कर्पूरी ठाकुर को भारत रत्न से विभूषित किया जाए. 224 पृष्ठों की यह पत्रिका विषय भिन्नता के हिसाब से आज का संदर्भ, विरासत, कैमरे में एवं जैसा मैंने देखा आदि खंडों में विभाजित है. आज का संदर्भ खंड में शामिल प्रथम आलेख में जाबिर हुसैन ने बहुजन विचारक कांचा इलैया द्वारा एक अंग्रेजी अख़बार को दिए इंटरव्यू में कर्पूरी ठाकुर को अनपढ़ कहकर खारिज़ करने एवं मुख्यमंत्री पद के लिए अयोग्य करार देने को आक्रोशित होकर कठघरे में खड़ा किया. इसी खंड में कर्पूरी जी के पुत्र रामनाथ ठाकुर का आलेख-सप्त क्रांति के वाहक है, जिसमें वर्तमान मुख्यमंत्री नीतीश कुमार को कर्पूरी की परंपरा में देखा गया है. सामाजिक न्याय की कसौटी पर शीर्षक तले प्रकाशित हरि नारायण ठाकुर के आलेख में जननायक के पूरे जीवन की सार-कथा समाई हुई है.

खंड-कैमरे में, कर्पूरी जी के पिता, पत्नी, बंधु-बांधव सहित कई दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण जीवन प्रसंगों की झांकी प्रस्तुत करता है. अंतिम संस्मरण खंड-जैसा मैंने देखा में परिषद के पूर्व सभापति ताराकांत झा एवं निहोरा प्रसाद यादव ने अपने रोचक अनुभव साझा किए हैं. जयप्रकाश नारायण को लोकनायक कहा जाता है और कर्पूरी ठाकुर को जननायक.

विरासत खंड में दो आलेख रंजना कुमारी के हैं, जिनमें पहले में कर्पूरी जी का जीवन-आकलन है, वहीं दूसरे में विपक्ष में रहते हुए विधानसभा में उनके द्वारा उठाए गए लोक महत्व के मुद्दों की विवेचना प्रस्तुत करते हुए उनके जन-सरोकारों एवं उसके प्रति उनकी संजीदगी का खाका है. दूसरी तरफ़ अपने मुख्यमंत्रित्व काल में कर्पूरी जी द्वारा विधानसभा में वाद-विवाद में भाग लेने और सरकार की ओर से बात रखने की नजीर भी एक कार्यवाही-अंश के रूप में ली गई है. इसी खंड में उनके निधन के बाद विधानसभा में व्यक्त की गई शोक संवेदनाओं का एक अंश स्वतंत्र अध्याय में रखा गया है. हालांकि, असावधानीवश इस संवेदना अभिव्यक्ति की तिथि का अंकन अध्याय के प्रारंभ और अंत, दोनों में गलत प्रकाशित हो गया है, क्योंकि 17 फरवरी को उनकी मृत्यु हुई थी, तो जून अथवा जनवरी में शोक संवेदना की तिथि अंकित होना ठीक नहीं हो सकता. यह कंप्यूटर आधारित कट-पेस्ट की भूल लगती है. दूसरी ओर, पत्रिका में एक रोचक- संवेदनाजन्य अवसर पाठकों को प्राप्त है कि वे 17 फरवरी, 1988 को दिवंगत हुए जननायक को लगभग एक माह पूर्व ही 20 जनवरी, 1988 को महान स्वतंत्रता सेनानी एवं सीमांत गांधी कहे जाने वाले अब्दुल गफ्फार खान के निधन पर सदन में संवेदना व्यक्त करते पाते हैं.

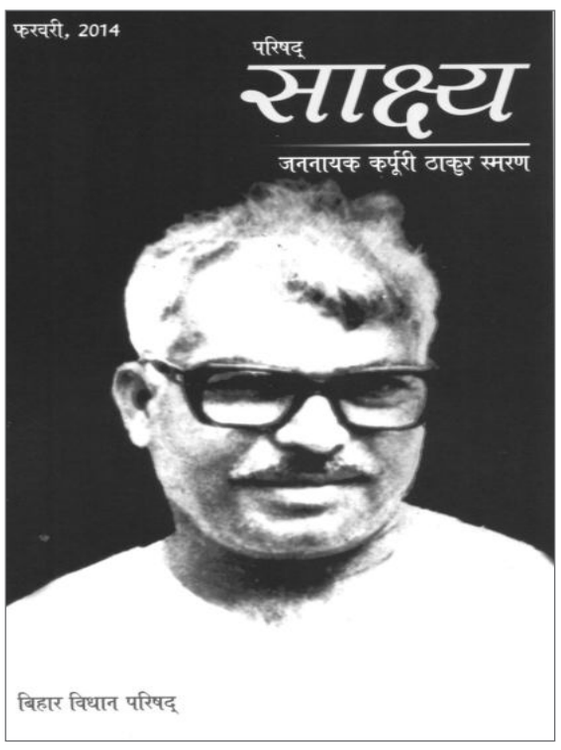

बिहार विधान परिषद्

खंड-कैमरे में, कर्पूरी जी के पिता, पत्नी, बंधु-बांधव सहित कई दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण जीवन प्रसंगों की झांकी प्रस्तुत करता है. अंतिम संस्मरण खंड-जैसा मैंने देखा में परिषद के पूर्व सभापति ताराकांत झा एवं निहोरा प्रसाद यादव ने अपने रोचक अनुभव साझा किए हैं. जयप्रकाश नारायण को लोकनायक कहा जाता है और कर्पूरी ठाकुर को जननायक. समान अर्थ वाले इन दोनों विशेषणों को लेते हुए यदि किसी आलेख अथवा संस्मरण में कोई बात कही गई होती, तो इन दोनों विभूतियों का अक्स समझने का मौक़ा मिलता. कर्पूरी जी के व्यक्तित्व एवं अवदान पर काफी-कुछ बातें यहां ज़रूर समाहित हैं, पर उन पर आलोचनात्मक नज़र कदाचित कम ली गई है. बावजूद इसके अंक पठनीय और संग्रहणीय है.■

feedback@chauthiduniya.com